'B E A U T Y   F O R   A S H E S'

मिट्टी से सोना

लेखक

जैक पूनन

अनुवादिका

निर्मला

प्रकाशक

मसीही सीहित्य संस्था

70, जनपथ, नई दिल्ली-1

'BEAUTY FOR ASHES'

by

Zac Poonen

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior written permission of the writer.

First Edition 5000, 1971
Second Edition 3000, 1995
Third Edition 2000, 2015

Printed by Published by
MASIHI SAHITYA SANSTHA
70 Janpath, New Delhi-110 001
011-23320253, 23320373
E-mail:mssjanpath@gmail.com

₹ 60/-

प्रस्तावना

मई 1971, कुनूर, दक्षिण भारत में निलगिरी केसविक कन्वेन्शन में दिए गए संदेश क्रमबद्ध रूप से इस पुस्तक में हैं। संदेशों का जिस प्रकार प्रवचन हुआ उसी रूप में वे यहाँ हैं।

कन्वेन्शन में सिडनी, ऑस्ट्रेलिया के डा० मारकस लोन के साथ वचन की सेवकाई में सहभागी रहना मेरा सौभाग्य था; तथा इस पुस्तक की प्राक्कथन लिखने के लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

इन संदेशों को टेप से कागज पर अंकित करने में श्रीमती थेल्या क्रेन्स, कुमारी लिन्डा फेरिस और कुमारी केरेन हार्नर ने जो परिश्रम किया उसके लिए भी मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करना चाहता हूँ।

प्रभु इस पुस्तक के वचन द्वारा आपको आशीष दे। निम्नलिखित पते पर यदि कोई लिखना चाहे तो मुझे अत्यन्त हर्ष होगा।

जैक पूनन
16, डा० कोस्टा स्कोटार,
बैंगलोर-560005

प्राक्कथन

श्री जैक पूनन के इस अध्ययन क्रम की सराहना करते मुझे हार्दिक हर्ष है। मई 1971 में निलगिरी पहाड़ के कन्वेन्शन में सर्वप्रथम ये संदेश दिए गए। मैं प्रतिदिन कन्वेन्शन में उपस्थित था तथा मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि कितनी विश्वासयोग्यता से उन्होंने परमेश्वर के वचन की शिक्षा दी। याकूब पर दिया गया एक संदेश मेरे स्मृति–पटल पर विशेष रूप से अंकित है। यह अत्यन्त उत्साह–वर्धक है कि श्री पूनन के संदेश अब साहित्यिक रूप में अधिकाधिक लोगों तक पहुँच सकते हैं। मेरी यही आशा है कि यह नई पुस्तक अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचे तथा परमेश्वर की आशिष जिस प्रकार मौखिक संदेशों पर थी उसी प्रकार इस पर भी प्रचुरता से हो।

मारकस लोन
आर्च–बिशप, सिडनी,
ऑस्ट्रेलिया

भूमिका

मानव की सृष्टि में परमेश्वर का महान तेजस्वी अभिप्राय था। जहाँ तक हमें ज्ञात है, सकल सृष्टि में केवल मनुष्य ही में यह क्षमता है कि वह परमेश्वर के जीवन और उसके स्वभाव में सहभागी हो। किन्तु इस सौभाग्य का रसास्वादन वह तभी कर सकता है जब वह स्वेच्छा-पूर्वक परमेश्वर में केन्द्रित जीवन व्यतीत का चयन करे।

अदन के उपवन में दो वृक्ष जीवन के दो सिद्धान्तों के प्रतीक थे। आदम या तो जीवन के वृक्ष में सहभागी हो सकता था (जो स्वयं परमेश्वर का प्रतीक था) और ईश्वरीय जीवन के द्वारा जीवित रह सकता था, अथवा भले-बुरे के ज्ञान के वृक्ष को चुन सकता था और इस प्रकार अपने स्व-जीवन में आगे बढ़ परमेश्वर से स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकता था। जैसा हम सबको विदित है, उसने स्वतन्त्र जीवन का चुनाव किया। आदम के वंश होकर अब हम सबने इसी स्व-जीवन का विकास किया है।

परन्तु आदम के पाप में गिरने पर, मनुष्य के लिए परमेश्वर का अभिप्राय नहीं बदला। मसीह इस संसार में आया ताकि इस आत्मा-केन्द्रित जीवन से जिसे हमने वंशानुगत प्राप्त किया है, हम छुटकारा पाएं और फिर एक बार जीवन के वृक्ष में सहभागी होने का अवसर पाएं। मसीह यही बहुतायत का जीवन हमें देता है।

यशायाह ने भविष्यद्वाणी की थी (अध्याय 61:1-3) कि मसीह अपने आने पर लोगों को दासता से स्वतंत्र करेगा। मनुष्य न केवल शैतान की कैद में है किन्तु अपने आत्म-केन्द्रित जीवन की भी। मसीह हमें दोनों से मुक्त करने के लिए आया। यशायाह ने कहा कि मसीह जिन्हें छुटकारा

देगा उनके सिर पर की राख दूर करके सुन्दर पगड़ी बाँधेगा। राख आत्म–केन्द्रित जीवन का सही प्रतीक है—जो उसकी निरर्थकता एवं मलिनता का चित्रण करता है। मसीह राख के स्थान पर हमें अपने जीवन का सौन्दर्य देना चाहता है। कैसा अहोभाग्य! तौभी अनेक मसीही इसका पूर्ण आनन्द नहीं लेते। क्यों?

हम इसका आनन्द कैसे ले सकते हैं?

यही इस पुस्तक का विषय है...इन पृष्ठों पर हम बाइबल के चार चरित्रों पर दृष्टि करेंगे: और प्रत्येक का जीवन शिक्षाओं से भरा पड़ा है।

प्रकाशक

1

आत्म–केन्द्रित जीवन की पतितावस्था

आत्म–केन्द्रित जीवन से छुटकारे का आनन्द हम तब तक कदापि नहीं ले सकते जब तक उसके सम्पूर्ण पतितावस्था पर दृष्टिपात न कर लें। हम (लूका 15 के दृष्टान्त में) ज्येष्ठ पुत्र पर दृष्टि करें, क्योंकि आत्म–केन्द्रित जीवन की पूर्ण सड़ाहत का, बाइबल के अन्य समस्त उदाहरणों में सम्भवतः वही सर्वोतम उदाहरण है।

साधारणतया दृष्टान्त में दोनों युवकों में से छोटे पुत्र को ही बुरा समझा जाता है। परन्तु यदि हम बड़े पुत्र की ओर थोड़े ध्यान से देखें, तो जान लेंगे कि यदि अधिक नहीं तो उतना ही बुरा अवश्य था। यह सत्य है, कि उसने अपने छोटे भाई के ही सदृश्य पाप नहीं किए। किन्तु उसका हृदय भी उतना ही कुटिल और स्वार्थी था।

मानव की पूर्ण पतितावस्थाः

प्रत्येक व्यक्ति में मानव–हृदय मूलतः एक सा ही है। जब बाइबल में मानव–हृदय का यह वर्णन है कि वह सब वस्तुओं से अधिक धोखा देनेवाला होता है और उसमें असाध्य रोग लगा है (यिर्म॰ 17:9), तो उसका संकेत आदम की प्रत्येक सन्तान की ओर है। यह सम्भव है कि हमारा पालन पोषण सभ्य व शिष्ट संस्कृति में हुआ हो, हम सुरक्षित वातावरण में बढ़े हों तथा पाप करने के कम अवसर मिले हों जिनके

कारण हमने दूसरों जैसे भयानक पाप न किए हों। किन्तु हम इसी आधार पर स्वयं को उनसे श्रेष्ठ नहीं समझ सकते। क्योंकि यदि हम भी उनके जैसे वातावरण में बढ़ते, और यदि हमने भी उनके सदृश्य समस्याओं का सामना किया होता, तो निस्सन्देह उन्हीं पापों में हमारा भी अन्त होता। यह स्वीकृत करना हमारे लिए लज्जास्पद हो सकता है, किन्तु तौभी सत्य है।

जितने शीघ्र हम तथ्य को जान लेंगे, उतने शीघ्र हम छुटकारे का अनुभव करेंगे। पौलुस ने पहचान लिया कि उसके शरीर में कोई अच्छी वस्तु वास नहीं करती (रोमि॰ 7:18)। वही छुटकारे की दिशा में उसका प्रथम कदम था (रोमि॰ 8:2)।

मनुष्य वाह्य रूप से दृष्टि कर किसी को अच्छा तो किसी को बुरा कहता है। परन्तु परमेश्वर जो मन पर दृष्टि करता है सब मनुष्यों को एक सी ही स्थिति में देखता है। बाइबल की शिक्षा है कि समस्त मानव पूर्णरूप से पतित हैं। उदाहरणार्थ रोमियों 3:10-12 पर विचार कीजिए: "कोई धर्मी नहीं, (और यदि हम सोचें कि यह अत्युक्ति है, तो फिर आगे कहा गया है), एक भी नहीं। कोई समझदार नहीं; कोई परमेश्वर को खोजनेवाला नहीं। सब भटक गए हैं, सब के सब निकम्मे बन गए, कोई भलाई करनेवाला नहीं, एक भी नहीं।" रोमियों 3:10-20 समस्त मानवमात्र के—चाहे वे अधर्मी हों अथवा धर्मी, अपराध का सारांश है। रोमियों 1:18-32 में "छोटा पुत्र"—बाह्य रूप से अनैतिक एवं अधर्मी व्यक्ति का विवरण है। अध्याय 2 में, "ज्येष्ठ पुत्र"—धर्मी व्यक्ति का चित्रण है जो ऐसा होते हुए भी उतना ही पापी है। व्यक्तियों के इन दोनों वर्गों को एक समान दोषी ठहराता है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

मानव वस्तुतः पूर्णरूपेण पतित है; और यदि परमेश्वर उस तक न पहुँचे और उसके लिए कुछ न करे, तो निश्चय ही उसके लिए कोई आशा नहीं है।

आत्म-केन्द्रित अवस्था:

ज्येष्ठ पुत्र को (लूका 15:25-32) हम मसीही कार्यकर्ता का प्रतीक कह सकते हैं। यदि कहानी में पिता को परमेश्वर का प्रतीक कहें, तो

पुत्र को परमेश्वर की सन्तान–मसीही का प्रतीक समझना न्याय संगत होगा। और तिस पर भी एक सक्रिय मसीही–क्योंकि दृष्टान्त में हम उसे अपने पिता के घर में दिन भर कमाने के बाद घर लौटते हुए पाते हैं। वह कोई आलसी नवयुवक नहीं था, जो घर बैठे अपने पिता की सम्पत्ति का भोग कर रहा हो। वह ऐसा युवक था जो अपने पिता के लिए परिश्रम कर रहा था, जो प्रगटतः अपने छोटे भाई की अपेक्षा अपने पिता से अधिक प्रेम रखता था–क्योंकि जो हो, उसने छोटे के सामन अपने पिता का घर नहीं छोड़ा, न ही अपने पिता का धन उड़ाया। ऊपर से तो वह अति श्रद्धालु प्रतीत होता है, किन्तु वह अपने छोटे भाई के ही सदृष्य स्वार्थी था, जैसा हम आगे देखेंगे। यह ऐसे विश्वासी की तस्वीर है जो प्रभु के कार्य के लिए सक्रिय हो तथा प्रभु की भक्ति से परिपूर्ण दिखाई पड़ता हो परन्तु तौभी आत्म–केन्द्रित हो।

परमेश्वर ने कतिपय नियमों सहित इस संसार की सृष्टि की है। यदि हम नियमों की उपेक्षा करें, तो निस्सन्देह कुछ हानि अथवा कष्ट झेलेंगे। एक नियम जिसे परमेश्वर ने ठहराया है वह यह है कि पृथ्वी को सूर्य की परिक्रमा करनी चाहिए। यदि पृथ्वी की स्वयं की इच्छा होती और उसने निर्णय किया होता कि वह अब फिर कभी सूर्य में केन्द्रित नहीं रहेगी, परन्तु स्वतः के ही चहुं ओर घुमेगी, तो ऋतु परिवर्तन नहीं होते और शीघ्रति–शीघ्र संसार के समस्त जीव मर मिटते। मृत्यु का प्रवेश हो जाता।

आदम भी इसी प्रकार परमेश्वर में केन्द्रित होने के लिए सृजा गया। जिस दिन उसने उस केन्द्र का इन्कार किया तथा स्वतः केन्द्रित रहना चुन लिया–जो परमेश्वर द्वारा निषेधात्मक फल के खा लेने से प्रगट है–उसी दिन उसकी मृत्यु हो गई, जैसे परमेश्वर ने पहले से ही कहा था।

अतः हम स्मरण रखें कि यहाँ हमारे लिए एक शिक्षा है। हमारा मसीही जीवन तथा हमारी सेवा जितनी अधिक आत्म–केन्द्रित होगी, उतनी ही अधिक हम आत्मिक मुत्यु का अनुभव करेंगे–चाहे हमारा नया जन्म हो चुका हो और हम कितने ही दृढ़ सिद्धान्त पर आस्था रखने वाले

क्यों न हों। और हमें इसका आभास तक नहीं होगा, तौभी हम दूसरों तक आत्मिक मृत्यु पहुँचाते रहेंगे। यह सम्भव है कि परमेश्वर के लिए उत्साह एवं लगन से कार्य करने वाले के रूप में हमारा सुनाम हो (जैसा सम्भवतः ज्येष्ठ पुत्र का था), परन्तु इतना होते हुए भी प्रभु हमें यह कहकर डांटे, "मैं तेरे कामों को जानता हूँ, कि तू जीवता (मसीही) तो कहलाता है, पर, है मरा हुआ" (प्रका॰ 3:1)। यह अत्यन्त दुखद विषय है, और तौभी मसीही कार्य में सम्भव है। अनेक मसीही कार्यकर्ता अपने बनाए हुए सुनाम पर ही आश्रित रहते हैं। दूसरों का सम्मान प्राप्त कर, वे इस तथ्य से बहुधा अनभिज्ञ होते हैं कि परमेश्वर उन्हें पूर्णतः विभिन्न दृष्टिकोण से निहारता है। आत्म-केन्द्रित अवस्था से स्वतः कभी छुटकारा न पाकर, वे दूसरों को छुड़ाने में असमर्थ रहते हैं, चाहे कितना ही प्रचार करते (या गाते) क्यों न हों। अतएव, हम सबके लिए बड़े पुत्र की कहानी में एक चेतावनी दी गई है।

अपने अन्दर की बुराई को पहचान लेना:

परमेश्वर अनेक बार हमारे जीवनों में संकट के समय आने देता है ताकि हमारे भीतर से हमारा भ्रष्ट स्वार्थी जीवन बाहर आ जाए कि हम स्वयं को वैसा ही देखने लगें जिस प्रकार हम वास्तव में हैं। जब परिस्थितियां सहज हों तब स्वयं को आत्मिक समझना हमारे लिए अत्यन्त सरल है। जब हमारे समक्ष कोई समस्या नहीं होती, जब कोई हमें क्रोध दिलानेवाला नहीं होता, जब सब कुछ निर्विघ्न होता रहता है जब हमारे संग काम करने वाले हमारी अभिरूचि के अनुसार होते हैं, उस समय हम अपनी वास्तविक मनःस्थिति के सम्बन्ध में स्वतः को धोखा दे सकते हैं। किन्तु जैसे ही हमारे घर में कोई ऐसा नौकर आ जाये जो हमें क्रोध दिलाये, अथवा कोई पड़ोसी या साथ काम करने वाला जो हमें पूरे समय क्रुद्ध करे, तो हमारी आत्मिकता की परत लुप्त हो जाती है। हमारा आत्म-केन्द्रित जीवन अपनी सम्पूर्ण कुरूपता लिए प्रगट हो जाता है।

ज्येष्ठ पुत्र के साथ ऐसे ही हुआ था। जब उसके छोटे भाई को

आदर मिला, तो वह दुःखी हो गया। कोई कभी सोच तक नहीं सकता था कि बड़ा पुत्र इतना चिड़चिड़ा व्यवहार कर सकता है। वह अब तक भद्र पुरुष सा दिखाई दिया था। किन्तु उसने ऐसे दबाव का सामना पहले कभी नहीं किया था। अब, उसका यथार्थ स्वभाव प्रगट हो चुका था। उस क्षण के क्रोध ने उसे बुरा नहीं बनाया था। किन्तु क्रोध-जन्य परिस्थिति ने वह सब बाहर ला दिया था जो पूरे समय भीतर विद्यमान था।

एमी कारमाइकल ने एक बार कहा था कि एक प्याला भर मीठा जल बूंद भर कड़ुवे जल को भी नहीं गिरा सकता, चाहे कितनी ही जोर से वह क्यों डाला जाए। यह अति सत्य है। यदि हमारे जीवनों एवं हमारे होठों से कड़ुआ जल बाहर आता है, तो वह इसलिए क्योंकि उसका निवास सदैव से वहाँ था। क्रोध जन्य बातें हमें बुरा नहीं बनाती। जो अन्दर है उसे वे केवल बाहर ला देती हैं। अतएव यह हमारे लिए परमेश्वर को अत्यन्त धन्यवाद देने योग्य विषय होना चाहिए कि वह हमारे जीवनों में ऐसे समय आने देता है। जब हम अपने स्वभाव की कुरूपता पर दृष्टि करते हैं। यदि ऐसे अवसर न आते, तो हम कभी न जान पाते कि हमारे अन्दर बुराई का सोता है और कोई अच्छी वस्तु हमारी देह में वास नहीं करती तथा हम पूर्ण रूप से पतित हैं।

इससे हमें यह शिक्षा भी मिलती है कि मनोवेगों को दबा लेना जीत नहीं है। कठिन परिस्थिति में सम्भवतः कोई व्यक्ति क्रोध से भड़क उठे, जबकि दूसरा (थोड़े अधिक आत्म-नियन्त्रण के साथ), उसी परिस्थिति में, बिन बोले भीतर ही भीतर उबलता रहे! मनुष्यों की दृष्टि में, दूसरे व्यक्ति को नम्र होने का सम्मान मिल सकता है। किन्तु परमेश्वर जो मन को देखता है जानता है कि दोनों मनुष्य अन्दर ही अन्दर उबले थे और वह दोनों को समान रूप से बुरा समझता है। उनके वाह्य व्यवहार में भिन्नता उनके भिन्न-भिन्न प्रकृति के होने के कारण थी जो परमेश्वर के लेखे कुछ नहीं है।

यदि अपने बुरे मनोभावों को दबा लेना विजय होती, तो मेरे विचार में दुकानदार, व्यापारी और यान-परिचारिकाएँ सर्वाधिक मसीह सदृश्य

लोगों में से होते! उनके ग्राहक उनके धैर्य की जितनी अधिक परख करते हैं, वे अपने धन्धे के कारण उतना ही शील आचरण उनके प्रति दर्शाते हैं—भले ही भीतर कितने ही उबलते क्यों न हों! नहीं, दबा लेना विजय नहीं है। परमेश्वर की इच्छा नहीं कि हम छुटकारा पाए हुए और आत्मिक दिखाई दें, किन्तु वस्तुतः वैसे रहें। पौलुस ने कहा, "अब मैं जीवित न रहा, पर मसीह मुझ में जीवित है" (गला॰ 2:20)। यह वह स्थान है जहाँ परमेश्वर हमें पहुँचाएगा।

आत्म-केन्द्रित जीवन के दोनों पहलुओं की विशेषताओं पर अब हम दृष्टि करें। प्रथम, परमेश्वर के प्रति उसका व्यवहार, और दूसरा मनुष्यों के प्रति उसका व्यवहार। ज्येष्ठ पुत्र की कहानी में हम इन दोनों को चित्रित देखते हैं।

आत्म-केन्द्रित का परमेश्वर के प्रति व्यवहार:

जिसका जीवन आत्म-केन्द्रित होता है वह परमेश्वर तथा उसकी सेवा के प्रति रूढ़िवादिता की आत्मा प्रगट करता है। आत्म-केन्द्रित व्यक्ति परमेश्वर की सेवा करने का प्रयत्न कर सकता है। वह उसकी सेवा में भी अत्यन्त सक्रिय हो सकता है— परन्तु एसी सेवकाई रूढ़िवादिता की सेवकाई होती है। परमेश्वर के लिए की गई सेवा के बदले में वह प्रतिफल खोजना है। बड़े पुत्र ने अपने पिता से कहा, "मैं इतने वर्ष से तेरी सेवा कर रहा हूँ... तौभी तूने मुझे कभी एक बकरी का बच्चा भी न दिया।" उसने प्रतिफल की आशा से अब तक सेवा की थी, जो अभी तक प्रगट नहीं हुआ था। अब दबाव के क्षण ने इस तथ्य को प्रगट कर दिया।

आत्म-केन्द्रित व्यक्ति इसी प्रकार परमेश्वर की सेवा करता है— स्वतंत्रता-पूर्वक आनन्द के साथ और स्वेच्छा से नहीं, किन्तु प्रतिफल की आशा से। वह परमेश्वर से किसी आत्मिक आशिष अथवा इनाम प्राप्त करने की प्रत्याशा करता है। किन्तु ऐसे उद्देश्य से की गई सेवा भी रूढ़िवादी होती है तथा परमेश्वर के सम्मुख ग्रहण योग्य नहीं होती।

ज्येष्ठ पुत्र ने इतने वर्षों तक अपनी सेवकाई के लिए पिता से कुछ इनाम न पाने के कारण अपने पिता को कठोर और निर्दयी समझा। वह

उस व्यक्ति के समान था जिसे एक तोड़ा दिया गया था जिसने बुलाये जाने पर अपने स्वामी के पास जाकर कहा, "तेरी मोहर यह है, जिसे (बिना व्यापार किए) मैंने अंगोछे में बान्ध रखी, क्योंकि मैं तुझसे डरता था (कि कहीं तू मेरा लाभ न मागं ले) इसलिए कि तू कठोर मनुष्य है" (लूका 19:22)। स्वार्थी व्यक्ति यह सोचता है कि परमेश्वर बहुत अधिक माँग करने वाला है, जिसे प्रसन्न करना बहुत कठिन है, इसलिए वह परमेश्वर की सेवा में कठिन परिश्रम करते जाता है और तिस पर भी ऐसे कठोर परमेश्वर की माँगों को पुरा न कर सकने के कारण स्वयं को धिक्कारता है।

इस प्रकार की सेवा, परमेश्वर हममें से किसी से भी नहीं चाहता। बाइबल में लिखा है, "परमेश्वर हर्ष से देने वाले से प्रेम रखता है।" (2 कुरि० 9:7)। सेवा के सम्बन्ध में भी परमेश्वर उससे प्रसन्न होता है, जो बिना आवश्यकता के, बिना कुड़कुड़ाए, आनन्द के साथ परमेश्वर की सेवा करे। अनिच्छा-पूर्वक की गई सेवा से तो उत्तम है कि कोई सेवा ही न की जाए। जब कोई प्रतिफल के लिए सेवकाई करता है तो अधिक समय नहीं व्यतीत होता और वह परमेश्वर पर कुड़कुड़ाने लगता है कि उसे पर्याप्त आशिष नहीं प्राप्त हो रही है। स्थिति और भी गम्भीर हो जाती है जब दूसरों को उससे बढ़कर आशिष मिलती है।

क्या हम कभी अपने काम और आशिष की तुलना दूसरों से करते हैं? यह केवल रूढ़िवादी सेवा का ही परिणाम हो सकता है। यीशु ने एक बार दृष्टान्त में कुछ मज़दूरों के विषय में बताया जो किसी व्यक्ति द्वारा अलग-अलग समय पर कार्य में नियुक्त किए गए। दिन बीत जाने पर स्वामी ने प्रत्येक को एक-एक दीनार दिया। जिन्होंने सबसे अधिक समय तक मज़दूरी की थी उन्होंने कुड़कुड़ाकर स्वामी से कहा, "तू हमें इन दूसरों के बराबर मज़दूरी कैसी देता है? हमें अधिक मज़दूरी मिलनी चाहिए।" उन्होंने मज़दूरी के लिए सेवा की और जब उन्हें वही मिली जिसके लिए वे सहमत हुए थे, तब उन्होंने कुड़कुड़ाकर कहा कि दूसरों को उनके बराबर नहीं मिलना चाहिए (मत्ती 20:1-16)।

ठीक यही हम बड़े पुत्र में देखते हैं, "तू इतना सब मेरे छोटे भाई को कैसे दे सकता है। उसने नहीं, किन्तु मैं ही ने तेरी सेवकाई ईमानदारी के साथ की है।"

जब इस्राएलियों ने कुड़कुड़ाते हुए परमेश्वर की सेवा की, तब परमेश्वर ने उन्हें बंधुआई में भेज दिया जैसा उसने उनसे कहा था: "तू जो सब पदार्थ की बहुतायत होने पर भी आनन्द और प्रसन्नता के साथ अपने परमेश्वर यहोवा की सेवा नहीं करेगा, इस कारण तुझको...अपने. ..शत्रुओंओं की सेवा करनी पड़ेगी" (व्य॰ वि॰ 28:47)। नहीं रूढ़िवादी सेवकाई में परमेश्वर को तनिक प्रसन्नता नहीं होती।

आत्म-केन्द्रित मसीही बहुधा परमेश्वर की सेवकाई इसलिए करते हैं कि दुसरों की दृष्टि में स्वत: को आत्मिक बनाए रखें। मसीह के प्रति पवित्र और उत्सुक प्रेम के वश होकर नहीं किन्तु इस भय से वे मसीह के कार्य में सक्रिय रहते हैं कि कुछ न करने से दुसरे उन्हें आत्मिक बातों में निरूत्साही न सोच बैठें। और जब ऐसे लोग स्वत: के लिए सहज तथा इस प्रकार का मार्ग चुन लेते हैं जिससे उनको आर्थिक लाभ प्राप्त हो, तो सब को यह विश्वास दिलाने का कठिन प्रयास करते हैं कि उस मार्ग में परमेश्वर ने उनकी अगुवाई की है! जब तक यह भय छिपा हुआ न हो कि दूसरे अब मुझे कम आत्मिक समझने लगेंगे, तब तक स्वयं को उचित ठहरा कर इस प्रकार अपना समर्थन करने की क्या आवश्यकता। इस प्रकार परमेश्वर की सेवकाई करने में कितना भय और दबाव है।

उस सेवकाई में कितना हर्ष और कितनी स्वतंत्रता है जो मसीह के प्रति प्रेम से प्रेरित हो! प्रेम ऐसा तेल है जो हमारे जीवनों की मशीन को गतिमान बनाए रखता है जिससे वह धरधराएं न! याकूब ने राहेल को पाने के लिए सात वर्ष तक सेवकाई की। और बाइबल में लिखा है कि वे सात वर्ष उसे उसके प्रति प्रेम के कारण कुछ ही दिन जैसे प्रतीत हुए (उत्पत्ति 29:20)। हमारे साथ भी ऐसा ही होगा जब हमारी सेवा परमेश्वर के प्रति प्रेम से प्रवृत होगी। उसमें कोई भय नहीं होगा न ही दास जैसे घसीटे जाने की भावना होगी।

बाइबल की शिक्षानुसार मसीह और उसकी कलीसिया का सम्बन्ध पति–पत्नी के सम्बन्धों जैसा है। पति अपनी पत्नी से प्रमुखतः क्या अपेक्षा करता है? उसकी सेवकाई की? नहीं। विवाह में वह प्रथम महत्व इस बात को नहीं देता कि यह उसके लिए पकाएगी या उसके वस्त्र धोएगी की नहीं। वह तो मुख्यतः उसके प्रेम का आकांक्षी होता है। उसके बिना, सब निरर्थक है। परमेश्वर हमसे भी यही चाहता है।

शिक्षा ग्रहण न करना:

आत्मा–केन्द्रित जीवन की दुसरी विशेषता यह है कि वह शिक्षा को ग्रहण नहीं करना चाहता। जब बड़ा पुत्र क्रोध में घर के बाहर खड़ा था, तब उसके पिता ने बाहर आकर उससे निवेदन किया। परन्तु उसने हठ नहीं त्यागा और सुनने से इन्कार किया।

वस्तुतः "लड़का दरिद्र होने पर भी ऐसे बूढ़े और मूर्ख राजा से अधिक उत्तम है जो फिर सम्मति ग्रहण न करे" (सभो॰ 4:13)। जो सोचता है कि सब जानता है और इसलिए दूसरों से सीखने को तैयार नहीं रहता वह निश्चय ही सोचनीय अवस्था में है।

आत्म–केन्द्रित व्यक्ति को अपने सही होने का इतना निश्चय होता है कि वह किसी के द्वारा सुधारे जाने को तैयार नहीं होता। अतएव वह नहीं चाहता कोई उसकी आलोचना करे। हमारी आत्मिकता की परख तब तक सम्भवतः नहीं होती जब तक हम विरोध का सामना नहीं करते। डा. ए. डब्ल्यू टोज़र ने कहा है कि जब कोई हमारी आलोचना करे तो उस समय हमें केवल यही ध्यान रखना चाहिए कि वह आलोचना सही है या गलत, यह नहीं कि आलोचना करने वाला व्यक्ति हमारा मित्र है या शत्रू। बहुधा हमारे मित्रों की अपेक्षा हमारे शत्रू ही हमारे विषय में अधिक सत्य बात हमें बतलाते हैं।

दुरग्रही और हठी स्वभाव आत्म–केन्द्रित व्यक्तित्व का चिन्ह है। और हम स्मरण रखें कि अपने साथी–व्यक्तियों के प्रति यदि हमारा बर्ताव एकदम कठोर है और हम सदा अपने बचाव के पक्ष में रहते हैं तो यह दर्शाता है कि हमारा मन भी परमेश्वर के प्रति इसी प्रकार का है। यदि

हम अपने भाइयों के द्वारा (चाहे वे कितने भी अल्प आयु के क्यों न हों) सीखने और सुधरने को तैयार नहीं रहते, तो केवल यह दर्शाते है कि इतने आत्मिक अनुभव और बाइबल-ज्ञान के होते हुए भी हम स्वयं में कितने सिमटे हुए है।

पिता अपने बड़े पुत्र से याचना करता है परन्तु वह आहत तथा अपने लिए दया की भावना से भरा होता है। आत्म-केन्द्रित मसीह यह चाहता है कि उसे दूसरे मनाएं, प्रसन्न करें तथा छोटे बालक जैसे थपथपाएं–यहा तक कि वह परमेश्वर से भी यही अपेक्षा करता है। परमेश्वर को ऐसे व्यक्तियों से लगातार बिनती करनी पड़ती है, परन्तु वे सरलता से नहीं सुनते। अन्ततः वे भी बड़े पुत्र के समान, स्वतः को पिता के घर से सर्वथा बाहर खड़े हुए पाएंगे।

आपने देखा– मानव मन कितना भयानक है!

मनुष्यों के प्रति आत्म-केन्द्रित जीवन का व्यवहार

ईर्ष्या और प्रतिष्ठा का प्रेमः

जब हमारी संगति परमेश्वर से खींची या टूटी हुई हो तो उसका अवश्यम्भावी प्रभाव मनुष्यों के साथ हमारे सम्बन्धों पर पड़ता है। जब आदम परमेश्वर के जीवन से अलग हो गया तब उसने तत्काल ही हव्वा के लिए भी अपना प्रेम खो दिया। परमेश्वर द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या उसने पाप किया है, उसने अपनी पत्नी पर दोषारोपण करते हुए कहा, “हे परमेश्वर, दोष मेरा नहीं है। इस स्त्री का है।”

आत्म-केन्द्रित व्यक्ति की एक विशेषता यह है कि वह दूसरों के प्रति ईर्ष्यालु होता है। ज्येष्ठ पुत्र ने (दृष्टान्त में) अपने छोटे भाई से ईर्ष्या की और इसीलिए वह क्रुद्ध हुआ। इतने वर्षों तक ज्येष्ठ पुत्र ही घर में निर्विवाद उत्तराधिकारी था। नौकर उसे झुक-झुककर प्रणाम करते थे। किन्तु अब उसकी स्थिति भयास्पद है। कोई अन्य व्यक्ति घर में आकर्षण

का केन्द्र है। और अब न वह देख सकता है न ही सह सकता है। ईर्ष्या रूपी दैत्य अब उसके हृदय में अपने क्रूर पंजे गड़ाने ही पर है।

आत्म-केन्द्रित जीवन की यह आकाँक्षा होती है कि दूसरे उस पर ध्यान दें। वह दूसरों की प्रशंसा चाहता है तथा लोगों की प्रशंसा का एकमात्र केन्द्र होने में उसे अत्यन्त हर्ष होता है। उसे सर्वोच्च पद प्रिय होता है और वह निरन्तर किसी न किसी प्रकार से स्वतः की ओर ध्यानाकृष्ट करता रहता है। आत्म-केन्द्रित मसीही उन अवसरों की ताक में रहता है जब दूसरों को बता सके कि उसने प्रभु के लिए क्या किया है—सम्भवतः अत्यन्त सहज ढंग से किन्तु भीतर ही भीतर यह आशा करते हुए कि दूसरे उसकी सराहना करें। जब किसी और को सफलता मिलती है और अन्य व्यक्ति उससे अच्छा कार्य सम्पन्न करता है तब उसकी छाती पर सांप लोटने लगता है और उसे आघात पहुँचता है।

आत्म-केन्द्रित व्यक्ति को शीघ्र ही चोट पहुँचती है और वह सरलता से व्यथित हो जाता है। उसकी अभिलाषा होती है कि दूसरे उस पर ध्यान दें और उससे सम्मति लें। उदाहरणार्थ यदि किसी समिति में उसकी सलाह न ली गई तो उसे पीड़ा पहुंचती है। वह स्वयं को इतना श्रेष्ठ सोचता है कि बात-बात पर बोलना उसे प्रिय लगता है यह सोचकर कि बाकी सबको उसकी बहुमूल्य सलाह की आवश्यकता है। ऐसे भी मसीही होते हैं जो एक बार मुँह खोलकर; बन्द करना नहीं जानते; और बोलते चले जाते हैं यह न समझते हुए कि दूसरे उससे तंग आए बैठे हैं। जीभ को वशीभूत् न कर सकना इस बात का सूचक है कि व्यक्ति का स्वार्थमय जीवन क्रूस पर नहीं चढ़ाया गया।

आत्म-केन्द्रित मसीही नहीं जानता कि किस प्रकार शालीनता तथा आह्लाद-पूर्वक दूसरा स्थान लिया जाए। यह जानकर कि नेतृत्व का पद किसी अन्य को मिला है और उसे द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है, उसे वेदना होती है। केवल तब ही वह दूसरा स्थान ग्रहण करने का इच्छुक होता है जब उसे ज्ञात है कि अगुवा के सेवानिवृत हो जाने पर प्रथम पद उसी को प्राप्त होगा।

जर्मन कैसर के लिए कहा गया था कि वह सदैव हर स्थान में आकर्षण का केन्द्र बनने की लालसा रखता था। जब वह किसी बच्चे के अर्पण में जाता था तो उसकी चाह होती थी कि काश वह शिशु होता; यदि विवाह में जाता तो चाहता कि काश दुल्हिन होता; और यदि किसी की अन्येष्टि क्रिया में जाता, तो चाहता कि शव बन पाता। हम न भूलें कि उसका हृदय हमसे बुरा नहीं था। आत्म-केन्द्रित व्यक्ति दूसरों का ध्यान, अत्यन्त पवित्रतम् कार्य तक में स्वयं की ओर आकृष्ट करना चाहता है—चाहे वह प्रचार करते समय हो या प्रार्थना पत्र लिखते समय हो। यह जब किसी मसीही अगुवे में पाया जाए, तो वह उसकी आत्मिक उन्नति में बाधक बनता है जिनकी सेवकाई करता है—क्योंकि वह लोगों को मसीह की ओर नहीं अपितु स्वयं की ओर आकर्षित करता है।

चीनी प्रेरित, वाचमेन नी की सेवकाई में अनेक वर्षों तक रहने वाले किसी व्यक्ति के उद्‌गार थे कि नी की सेवकाई द्वारा वह सर्वाधिक प्रभावित इस बात से हुआ था कि नी लोगों को स्वयं से परे मसीह की ओर खींचता था। हममें से प्रत्येक को भी यही करने के लिए परमेश्वर बुलाता है। परन्तु वस्तुतः कितने कम हैं जो ऐसा करतें हैं।

स्वयं से अल्प आयु के कार्यकर्ताओं को रोकना:

आत्म-केन्द्रित मसीही अगुवा इस भय से कि कहीं उसका पद ही न छीन जाए, अपने अन्तर्गत काम करनेवालों को अगुवा बनने से रोकता है। अतएव वह इस प्रकार की सेवकाई करता है कि अपनी सेवकाई के अन्तर्गत आनेवाले लोगों के लिए स्वयं को अत्यावश्यक बना ले। यह परमेश्वर की इच्छा के सर्वथा विपरीत है। आसॅवल्ड चेम्बर ने एक बार कहा था कि यदि कोई स्वयं को किसी अन्य व्यक्ति की आत्मा के लिए अनिवार्य आवश्यकता बना ले तो वह परमेश्वर के विधान से अलग हो गया है। किसी भी मानवीय आत्मा के लिए अकेले परमेश्वर ही एकमात्र अनिवार्य आवश्यकता है। हममें से कोई यह स्थान ग्रहण करने का प्रयत्न कदाचित न करे।

मसीह की कलीसिया में कोई परमावश्यक नहीं है। हमारे बिना परमेश्वर का काम सहज ही चालू रह सकता है। वस्तुतः वह उन आत्मा-भिमानियों की सहायता के बिना और भी उत्तम रीति से चलाया जा सकता है जो स्वयं को परमावश्यक समझते हैं! हमें सतत् रूप से इस तथ्य को सामने रखना चाहिए। अतएव, जब कभी परमेश्वर की ऐसी बुलाहट हो कि हम स्वयं को पृष्ठभूमि में रखें तो हमें तैयार रहना चाहिए। परन्तु आत्म-केन्द्रित मसीही कार्यकर्ता यह कभी स्वीकार नहीं करेगा। वह अपने पद पर जितनी लम्बी अवधि तक सम्भव हो, बना रहना चाहेगा। आज ऐसे अनेक मसीही अगुवे परमेश्वर के कार्य में विघ्न पहुँचाते हुए अपने "सिंहासनों" पर सड़ रहे हैं। वे नहीं जानते कि शिष्टता-पूर्वक किस प्रकार पृष्ठभूमि में जाया जाए और दूसरों को अपना स्थान लेने दिया जाए।

आपने सम्भवतः यह उक्ति सुनी होगी कि बिना उत्तराधिकारी के सफलता असफलता है। यीशु ने यह जानकर लोगों को प्रशिक्षण दिया था कि वे उसका काम जारी रखें। साढ़े तीन वर्षों के मध्य उसने लोगों को प्रशिक्षित किया था कि वे नेतृत्व भार ले सकें। पौलुस ने भी काम ज़ारी रखने के लिए दूसरे लोगों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता को पहचाना था। 2 तीमुथियुस 2:2 में उसने तीमुथियुस से कहा, "जो बातें तूने बहुत गवाहों के सामने मुझसे सुनी है, उन्हें विश्वासी मनुष्यों को सौंप दे। जो (चौथी पीढ़ी तक) औरों को भी सिखाने के योग्य हों।" पौलुस ने वस्तुतः उनसे यह कहा, "यह निश्चय कर कि तू यह सम्पत्ति दूसरों को सौंप दे। अपने से अल्प आयु के लोगों को भी आगे बढ़ने से कभी न रोके।" व्यापार के क्षेत्र में भी संसार के लोग इस सिद्धान्त को जानते हैं। परन्तु अनेक मसीही अगुवे नहीं जानते। वास्तव में, "इस संसार के लोग अपने समय के लोगों के साथ रीति व्यवहारों में ज्योति के लोगों से अधिक चतुर हैं।"

सचमुच आत्म-केन्द्रित होकर कोई व्यक्ति अपने से अल्प आयु वाले व्यक्ति के प्रति जो उस की अपेक्षा उत्तम कार्य कर रहा हो, जलन रखता है। काइन ने सिर्फ इसलिए डाह की क्योंकि परमेश्वर ने हाबिल को ग्रहण

किया था और उसको अस्वीकार किया था। यदि हाबिल उससे अधिक आयु का होता, तो यह सहनीय होता। परन्तु इस तथ्य ने कि उसका छोटा भाई उससे श्रेष्ठ है उसे इतना आगबबूला बना दिया कि उसने हाबिल की हत्या तक कर दी।

यूसुफ एवं उसके भाइयों में भी हम यही बात देखते हैं। यूसुफ को ईश्वरीय प्रकाशन मिला जिससे उन्होंने ईर्ष्याविभूत होकर उससे पिंड छुड़ाने की सोची।

शाऊल राजा नौजवान दाऊद से ईर्ष्या करने लगा, क्योंकि स्त्रियों ने गाया था, "शाऊल ने तो हजारों को, परन्तु दाऊद ने लाखों को मारा है।" उस दिन से उसने उसे मार डालने की ठान ली। मानव इतिहास–और मसीही कलीसिया के इतिहास में भी ऐसी कहानियों की बारम्बार पुनरावृत्ति हुंई है।

दूसरी ओर नये नियम में बरनबास जैसे व्यक्ति पर दृष्टि डालने से कितना विरोधाभास प्रतीत होता है। वह एक अनुभवी कार्यकर्ता था जिसने तरसुस के नव–परिवर्तित पौलुस को, जिसे ग्रहण करने को कोई तैयार नहीं था, अपनी शरण में लिया। बरनबास ने उसे अन्ताकिया की कलीसिया में लाकर उत्साहित किया। प्रेरितों के काम 13 में हम पढ़ते हैं कि बरनबास और पौलुस एक साथ मिशनरी यात्रा पर निकले और जब बरनबास ने देखा कि परमेश्वर इस कनिष्ठ कार्यकर्ता, पौलुस को, स्वयं से बृहत् सेवकाई के लिए बुला रहा है, तो वह स्वेच्छा एवं शालीनता–पूर्वक पीछे हटकर पृष्ठभूमि में चला गया और तदुपरान्त "बरनबास और पौलुस" वाक्याशं प्रेरितों के काम की इस पुस्तक में तत्काल "पौलुस और बरनबास" में परिवर्तित हो गया। वर्तमान युग में मसीही कलीसिया की उन्नति में अवरोध उत्पन्न होता है, क्योंकि बरनबास जैसे लोग बहुत कम है जो जानते हैं कि पीछे हटकर दूसरों को सम्मान प्राप्त करने देना क्या है। हम महत्वहीन बातों में पीछे हटने को तैयार रहते हैं। उदाहरणार्थ दरवाजे से प्रवेश करते समय हम पीछे हटकर दूसरे को पहले जाने देते हैं तथा इसकी चिन्ता ही नहीं करते हैं। किन्तु मसीही

कलीसिया में पद तथा नेतृत्व प्राप्त करने जैसे महत्व के विषयों में, हम सहज ही पीछे हटने को तैयार नहीं होते। हमारा आत्म-केन्द्रिय जीवन अति छलपूर्ण होता है। महत्वहीन बातों के संबन्ध में हम स्वयं को दीन समझ कर मिथ्यभिमान कर सकते हैं। किन्तु महत्व के विषयों में हम अपनी वास्तविक झलक पाते हैं।

अभिमानः

आत्म-केन्द्रित व्यक्ति स्वयं को बहुत बड़ा सोचता है। ज्येष्ट पुत्र ने कहा, "मैं इतने वर्ष से तेरी सेवा कर रहा हूँ, और कभी भी तेरी आज्ञा नहीं टाली।" अपनी सेवकाई में अपने पिता के आज्ञाकारी होने का उसे दम्भ था। हमारे हृदयों में अभिमान की उत्पत्ति, न केवल हमारे सद्‌गुणों एवं सफलताओं के ही कारण होती है, किन्तु इसलिए भी क्योंकि हम यह सोचते हैं कि दूसरों ने हमारे जैसे अच्छा काम नहीं किया है। अभिमान सदैव अपनी तुलना दूसरों से करने का परिणाम होता है। यदि हमारे चहुं ओर के व्यक्ति स्पष्टतः हमसे उत्तम हों तो हम कभी घमण्ड नहीं करेंगे। यदि उस परिवार में कोई और भाई होता जिसने ज्येष्ठ पुत्र की अपेक्षा पिता की सेवा अधिक विश्वास-योग्यता से की होती तो ज्येष्ठ पुत्र उस भाई के सामने कभी गर्व नहीं कर पाता परन्तु यहाँ, उसने अनुभव किया कि वह सहज ही अपने कनिष्ठ भाई से स्वयं की तुलना कर सकता है। उसने अपने पिता से कहा, "मैंने इमानदारी से तेरी सेवा की है, परन्तु अपने इस छोटे बेटे को तो देख। उसने क्या किया है? केवल अपना पैसा वेश्याओं पर बर्बाद किया है।"

घमण्ड ने ही लूसीफर को नीचे गिराया। उसने स्वयं की तुलना अन्य स्वर्गदूतों से की और सोचा कि बुद्धि, सौन्दर्य एवं सम्मान में वह दूसरों से बढ़कर है। वह अभिषिक्त करूब था, परन्तु वह शैतान बन गया। अनेक लोगों ने भी परमेश्वर का अभिषेक इसी प्रकार खो दिया है। आप स्वर्गदूत सदृश्य हो सकते हैं, परन्तु घमण्ड आपको शैतान में बदल सकता है।

इसी रोग से फरीसी भी ग्रस्त थे। यीशु ने उस दृष्टान्त में उनका सही चित्रण किया जहाँ फरीसी ने प्रार्थना की, "हे परमेश्वर, मैं तेरा

धन्यवाद करता हूँ, कि मैं और मनुष्यों के समान नहीं हूँ। मैं उपवास रखता हूँ और प्रार्थना करता हूँ और दसवांश देता हूँ, इत्यादि।" आत्म-केन्द्रित जीवन भी इसी प्रकार का होता है। कभी कदा, यह और भी आवरणयुक्त होता है–जैसे संडे स्कूल शिक्षिका के उदाहरण में जिसने अपनी कक्षा को यह दृष्टान्त पढ़ा लेने के उपरान्त प्रार्थना की, "है प्रभु, हम तेरा धन्यवाद करते हैं कि हम फरीसियों के जैसे नहीं हैं।" यह सर्वाधिक निकृष्ट प्रकार का अभिमान है–अपनी दीनता का अभिमान करना। घमण्ड बहुधा स्वयं को ऐसे दीन परिधानों में भी प्रगट कर सकता है। यह आवश्यक नहीं कि स्वतः केन्द्रित मसीही कार्यकर्ता उद्धत दृष्टिकोण लिए हुए यहां फिरे। बाहर से वह मिथ्याभिमान धारण किए होता है, एवं "दीनतायुक्त" वार्तालाप कर स्वयं को अत्यन्त नम्र व्यक्ति दर्शाता है। किन्तु भीतर, वह अपनी तुलना दूसरों से करके अपनी अच्छाई और बड़प्पन एवं "दीनता" की शेखी बघारता है।

दूसरों को धिक्कारना:

दूसरों के साथ स्वतः की ऐसी तुलना अन्त दूसरों को धिक्कारने में होता है–कभी कदा हृदय को चुभनेवाले कटु वचनों में सुनिए कि ज्येष्ठ पुत्र ने अपने पिता से क्या कहा, "तेरा यह पुत्र, जिसने तेरी संपत्ति वेश्याओं में उड़ा दी है।" किसने उसे यह सूचना दी थी? किसी ने नहीं। उसने स्वयंमेव इतनी निम्नतर कल्पना की थी। जब आप किसी से घृणां करते हो तो उसके संबंध में निम्न से निम्न सम्भव बातों का विश्वास करना सहज होता है। अपने छोटे भाई के दोष ढ़ापने की अपेक्षा उन्हें प्रगट कर देने में बड़े भाई ने कितने उल्लास का अनुभव किया।

क्या हम दूसरों के केवल दोषों पर ही ध्यान देते हैं? क्या दूसरों को गिरते देखकर हम गुप्त रूप से रोमांचित हुए हैं–विशेषकर जब वह कोई ऐसा व्यक्ति रहा हो जिसे हम न चाहते हों? हमारा मन इतना दुष्टता से भरा होता है कि दूसरों को गिरते देख हमें तनिक यंत्रणा नहीं होता किन्तु इसके विपरित हम कुछ प्रफुल्लित हो जाते हैं चूंकि हम सोचने लगते है कि हम उनसे उत्तम हैं। ऐसा दृष्टिकोण आत्म-केन्द्रित व्यक्ति की पहचान है।

क्या हम दूसरों के उद्देश्यों की जाँच करते हैं? आत्म-केन्द्रित व्यक्ति किसी को कुछ करते देख स्वयं से कहता है, "मैं जानता हूं वह ऐसा किस लिए कर रहा है," और किसी कुत्सित अभिप्राय का उस पर दोषारोपण कर देता है। आत्म-केन्द्रित व्यक्ति क्या नहीं कर लेता– यहाँ तक कि वह स्वयं को परमेश्वर के सिंहासन पर आसीन कर लेता– है (क्योंकि अन्ततः अकेले परमेश्वर ही है जो दूसरों के अभिप्रायों की जांच कर सकता है।) पौलुस हमें चिताता है, "जब तक प्रभु न आए, समय से पहले किसी बात का न्याय न करोः वही तो अन्धकार की छिपी बातें ज्योंति में दिखाएगा, और मनों की मतियों को प्रगट करेगा" (1 कुरि॰ 4:5) अर्थात् यह कि प्रभु का कार्य हमने किस अभिप्राय से किया है। जब प्रभु लौटेगा, तब ही (उससे पहले नहीं) हम प्रत्येक व्यक्ति के यर्थाथ अभिप्रायों को जान लेंगे।

प्रेम रहित होनाः

आत्म-केन्द्रित व्यक्ति में दूसरे मनुष्यों के लिए वास्तविक प्रेम नही होता इसी कारण उसका व्यवहार उनके प्रति कठोर होता है। वह बहुत प्रेमी होने का दिखावा कर सकता है, किन्तु उसमें मसीह सदृश्य सच्चे प्रेम की कमी होती है। उतने वर्षों के दौरान उसने अपने पिता के समीप जाकर अपने खोए हुए भाई को ढूढ़ंने की इच्छा कभी प्रगट न की थी। उसे चिन्ता नहीं थी उसका भाई मरे या जीए। उसकी रूचि केवल इसी बात में थी कि अपने मित्रों के साथ आनन्दोत्सव मनाए (पद 29)। जब तक वह स्वयं सुखी था, उसे दूसरों की चिन्ता ही न थी चाहे उन्हें जो हो जाए।

क्या हम इसी प्रकार स्वयं में सिमटे हुए हैं? जो एक बार मसीह को अपना जीवन देकर पुनः पीछे हट गए हैं उनके प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या है? विश्वास से इस प्रकार पीछे हटनेवालों की अपेक्षा किसी अविश्वासी से प्रेम रखना अधिक सरल है। परन्तु यदि हममें वस्तुतः मसीह का प्रेम है, तो हम दोनों को प्यार करेंगे। छोटा पुत्र इस कहानी में विश्वास से पीछे हट जाने वाले का प्रतीक है। उसे धिक्कारना सहज है। उससे प्रेम रखना तथा उसकी सहायता करना कितना कठिन है। बाइबल में लिखा

है, "यदि कोई मनुष्य किसी अपराध में पकड़ा भी जाए, तो तुम जो आत्मिक हो, नम्रता के साथ ऐसे को संभालों" (गल॰ 6:1) और पुनः "यदि कोई अपने भाई को ऐसा पाप करते देखे...तो बिनती करे, और परमेश्वर, उसे. ..जीवन देगा" (1 यूहन्ना 5:16)। क्या गिरे हुओं के लिए हम इस प्रकार कि बनती करते हैं? नहीं। क्यों नहीं? क्योंकि स्वार्थ हमारा केन्द्र है।

जब हम आत्मिक जीवन में और भी अधिक गहराई पर उतरने तथा परमेश्वर के और निकट चलने का प्रयत्न करते हैं, तो कभी न भूलें कि गहरे आत्मिक जीवन से हमें और भी अधिक प्रेमी स्वभाव का बनना चाहिए। परमेश्वर हमें आत्मिक जीवन में गहराई पर इसलिए नहीं उतारता कि हम अपने मित्रों के साथ हर्षोल्लास मनाएं। यह सहज है कि हम अपने छोटे पवित्र समूह में (उनके साथ जिनका विश्वास हमारे सदृश्य हो) एकत्र हो जाएं–तथा पूरे समय उनको हेय दृष्टि से देखें जिन्हें हमारे समान "गहन आत्मिक जीवन" का अनुभव न हुआ हो। यह गहन आत्मिक जीवन तनिक नहीं है। यह तो आत्मिकता के छद्म वेश में आत्म–केन्द्रित होना है; तथा परमेश्वर के निकट यह घृणित कार्य है।

हम धोखा न खाएं। यदि हम केवल अपने "आत्मिक मित्र मण्डली" के दूसरे सदस्यों के साथ आनन्द मनाने में ही रूचि लेते हों (चाहे वह आत्मिक आनन्दोत्सव क्यों न हो), और उन विश्वासियों की संगति करने में असमर्थ हों जो हमारा सा दृष्टिकोण न रखते हों, तो हम वस्तुतः आत्मिक स्थिरता की स्थिति में हैं। बाइबल में लिखा है, "जो प्रेम नहीं रखता, वह मृत्यु की दशा में रहता" (1 यूहन्ना 3:14)। जिस "प्रेम" शब्द का इस पद में अनुवाद है वह यूनानी भाषा में "एगापे" शब्द है, जिसका अर्थ है, "मूल्यवान जानना," "उसके लिए चिन्ता होना," "उसके प्रति ईमानदार रहना" तथा "उसमें आनन्द लेना।" अतएव इस पद का यर्थाथ अर्थ है कि यदि हम अपने भाई बहिनों को (जो दूसरी मण्डली के क्यों न हों) मूल्यवान न जानें, यदि हमारे मन में उनकी चिन्ता न हो, यदि हम उनके प्रति ईमानदार न रहें और यदि हम उनमें आनन्द न लें, तो हमारे समस्त बाइबल–ज्ञान तथा आत्मिक अनुभवों के होते हुए भी, हम आत्मिक मृत्यु की स्थिति में हैं।

पवित्र आत्मा की प्राथमिक सेवकाई:

चाहे हम युवा हों या वृद्ध, केल्विन के सिद्धान्त को मानते हों अथवा आरमीनियन के, हमें चाहे जितने भी अनुभव और आशिषें प्राप्त हों, तौभी हमारा आत्मा बड़ी कठिनाई से मरता है। यदि स्वतः पर हमें विजयी होकर जीना हैं तो हमें जानना चाहिए कि प्रतिदिन क्रूस उठाना और मसीह का अनुसरण करना क्या है। अन्य कोई मार्ग नहीं है। अगले अध्यायों में हम इस पर विस्तार-पूर्वक चर्चा करेंगे।

किन्तु इस समय हम इतना स्मरण रखें, कि पवित्र आत्मा का हमारे जीवनों में प्रमुख कार्य यह है कि हमें आत्म-केन्द्रित जीवन पर जय पाने में सहायता दे। बाइबल में लिखा है, "शरीर आत्मा के विरोध में, और आत्मा शरीर के विरोध में लालसा करती है, और ये (शरीर और आत्मा) एक दूसरे के विरोधी है" (गल॰ 5:17)। इन दिनों जब विशेषकर अनेक मसीही पवित्र आत्मा की सेवकाई के विषय में भ्रम में हैं, यह स्मरण रखना उचित है कि उसका प्रमुख कार्य हमें शरीर (आत्म-केन्द्रित जीवन) के कामों को मारने में सहायता पहुँचाना है। वह हममें तथा हमारे द्वारा अनेक अन्य कार्य करता है। हम उनमें से किसी को तुच्छ न समझें। परन्तु आत्म-केन्द्रित जीवन को मार डालना उसका प्रमुख कार्य है—और यदि हम अपने जीवनों में उसे ऐसा नहीं करने दे रहे हैं, तो हमारे सब अन्य अनुभव सारहीन हैं।

बाइबल में लिखा है, "यदि तुम शरीर के अनुसार दिन काटोगे, तो मरोगे, यदि आत्मा से देह की क्रियाओं को मारोगे (और अभी इस अध्याय में देह की कुछ क्रियाओं पर ध्यान दिया है), तो जीवित रहोगे। इसलिए कि जितने लोग (इस प्रकार) परमेश्वर के आत्मा के चलाए चलते हैं, वे ही परमेश्वर के पुत्र है" (रोमि॰ 8:13, 14) बहुधा पद 14 को संदर्भ से अलग उद्धृत किया जाता है और जहां हमें जाना है अथवा जो काम करना है उस सम्बन्ध में आत्मा की अगुवाई से इस हवाले का अर्थ लिया जाता है। किन्तु वस्तुतः इसका संबन्ध पूर्व पद से है तथा संकेत पवित्र

आत्मा की ओर है कि वह हमारी आत्मा-केन्द्रित इच्छाओं को मारने में हमारी अगुवाई करता है। इस पद से यह शिक्षा भी मिलती है कि परमेश्वर के पुत्रों की यही पहचान है।

लूका 15 के दृष्टान्त में, हम ध्यान देते हैं कि पिता का प्रेम दोनों पुत्रों के लिए बराबर है। बड़े पुत्र के लिए उसका प्रेम छोटे से कुछ कम नहीं था। वह अपने दोनों पुत्रों के लिए घर से बाहर निकला। जब उसका छोटा बेटा घर लौटा, तो वह उसका स्वागत करने के लिए घर से बाहर निकला, तथा जब उसके ज्येष्ठ पुत्र ने घर में प्रवेश करने से इन्कार किया, तब भी वह उसे अन्दर लाने के लिए बाहर गया। उसने यहां तक उससे कहा, "पुत्र, तू सर्वदा मेरे साथ है; और जो कुछ मेरा है वह तेरा ही है।" क्या आपने आत्म-केन्द्रित व्यक्तियों तक के प्रति परमेश्वर के हृदय की विशालता देखी? वह हमसे प्रेम रखता है तथा जो कुछ उसका है सब हमें देने को लालायित है। परन्तु सर्वप्रथम वह हमें आत्म-केन्द्रित स्थिति से छुड़ाना चाहता है।

परमेश्वर का प्रेम स्वतः को धर्मी समझने वाले फरीसी और वेश्या के प्रति एक-सा है। वह दोनों से समान प्रेम करता है तथा उसने अपने पुत्र को दोनों के लिए मरने को दे दिया। किन्तु दोनों हृदयों का प्रत्युत्तर भिन्न हो सकता है; और अन्ततः इसी से पिता के घर में अन्तर आता है। जो छोटा पुत्र कभी पिता के घर से बाहर था वह अब भोजन पर बैठे अपने पिता के वैभव का रसास्वादन कर रहा है। बड़ा पुत्र जो सदा से भीतर था अब बाहर है। सचमुच, जैसा प्रभु ने कहा है, अनेक जो अब प्रथम हैं वे अन्तिम (अनन्त राज्य में पिछड़े) होंगे, और अनेक जो यहाँ अन्तिम हैं वहाँ (अनन्त राज्य में) प्रथम होंगे। जब हम स्वयं को दीन कर अपनी भ्रष्टता को स्वीकर कर लेंगे और पिता के प्रेम का सम्पूर्ण हृदय से प्रत्युत्तर देंगे, तब ही हम उसके राज्य में प्रवेश करने योग्य होंगे।

काश प्रभु हमारे हृदयों से बातें करे!

2

मसीह सदृश्य जीवन का मार्ग

(1) टूट जाना

उस मार्ग का स्पष्ट विवरण, जो हमें हमारे स्वतः केन्द्रित जीवन की भ्रष्टता में से बाहर निकालकर मसीह सदृश्य जीवन की सम्पूर्ण शोभा में ले चलता है, गलतियों 2:20 में है: "मैं मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया हूं, और अब मैं जीवित न रहा, पर मसीह मुझ में जीवित है।" सम्भवतः हमारे लिए यह इतना अच्छा पद हो जिसे हम कंठस्थ कर लें या जिससे हम अपने उपदेश के तीन प्रमुख खंड बना लें। परन्तु प्रेरित पौलुस के लिए जिसने इसे लिखा, इसमें उसका अनुभव वर्णित है। उसने अपने आत्म-केन्द्रित जीवन रूपी राख को मसीह के निज ईश्वरीय जीवन रूपी सौन्दर्य में परिवर्तित कर लिया था। और यह उसके लिए सम्भव हुआ था, क्योंकि उसने अपनी मृत्यु स्वीकर की थी।

जब 'मैं' (स्वार्थमय-जीवन) को क्रूस पर चढ़ा दिया जाए तब ही मसीह हममें अपनी महिमा को प्रगट कर सकता है। 2 कुरिन्थियों 3:18 में हम पढ़ते हैं कि पवित्र आत्मा हमको मसीह के महिमामय स्वरूप में अंश-अंश करके बदलता रहता है। दिन प्रतिदिन, वर्ष प्रति वर्ष परमेश्वर का आत्मा हमें मसीह की समानता में उत्तरोत्तर बढ़ाते रहना चाहता है। किन्तु महिमा के एक अंश से दूसरे अंश तक पहुंचने का मार्ग क्रूस है! यदि हम आत्मा के द्वारा अपने स्वार्थमय जीवन को मार डालें, तो मसीह के जीवन की परिपूर्णता को जानेंगे, अन्यथा नहीं।

आज हम आदम के समान जीवन के वृक्ष तक स्वतन्त्रता से नहीं पहुंच सकते जैसे वह अपने पतन से पूर्व पहुंच सकता था। उत्पत्ति 3:24 में हम पढ़ते हैं कि परमेश्वर ने जीवन के वृक्ष के समक्ष ज्वालामय तलवार को नियुक्त कर दिया। अतएव, हमारे इस वृक्ष में से लेने से पूर्व ज्वालामय तलवार को हम पर गिरकर हमारे आत्म-केन्द्रित जीवन को दो टुकड़े कर डालना है। परमेश्वर के जीवन तक पहुँचने का अन्यत्र मार्ग नहीं है। जीवन की परिपूर्णता का एकमात्र पथ क्रूस का मार्ग है। इस सत्य की शिक्षा पूरे धर्मशास्त्र में, उत्पत्ति से लेकर प्रकाशितवाक्य तक स्पष्ट शब्दों में साथ ही प्रतीकों में भी दी गई है। क्रूस हमें तोड़ता है साथ ही हमें खाली भी करता है। इसमें तथा अगले अध्याय में हम क्रूस के इन दोनों पहलुओं पर विचार करेंगे।

परमेश्वर के साथ याकूब की दो बार भेंट:

याकूब ऐसा पुरुष था जिसने अनुभव से यह सीखा कि टूटना क्या होता है। हम उसके जीवन से अनेक शिक्षाएँ ले सकते हैं।

बाइबल के सम्बन्ध में सर्वश्रेष्ठ बात यह है कि वह अपने महापुरुषों के दोषों एवं असफलताओं का वर्णन सर्वथा ईमानदारी से करती है। धर्मशास्त्र में संगमरमर के सन्तों का चित्रण नहीं है। परमेश्वर के वचन में हम स्त्री पुरुषों को ठीक जैसे वे थे वैसे ही देखते हैं। यही कारण है कि बाइबल के पात्रों की जीवनियां आधुनिक समय में लिखी गई अनेक जीवनियों से (जो निश्चित रूप से वर्णित व्यक्तियों की असफलताओं को छिपाकर उन्हें एकदम सन्त प्रदर्शित करते हैं) अधिक उत्साह-वर्धक हैं।

याकूब भी हमारे ही जैसे इच्छाओं वाला व्यक्ति था। हाँ, निस्सन्देह वह परमेश्वर का बुलाया हुआ, और परमेश्वर के अभिप्रायों को पूरा करने के लिए आदिकाल से ही चुना हुआ पात्र ठहराया गया था। परन्तु उसका हृदय ठीक हमारे सदृश्य भ्रष्ट और धोखे से भरा हुआ था। परमेश्वर सेवा में साधारण लोगों को बुलाता है—उत्कृष्ट कोटि के व्यक्तियों को नहीं। वह संसार के तुच्छ और अधर्म तथा निर्बल लोगों को अपना अभिप्राय पूर्ण करने के लिए बुलाता है। वह अपनी सेवकाई में मानवीय चतुराई एवं क्षमता को प्राथमिकता नहीं देता।

याकूब ने अपने जीवन में अनेक बार परमेश्वर के साथ भेंट की होगी। किन्तु उत्पत्ति में दिए गए वृत्तान्त के अनुसार, उसकी परमेश्वर के साथ प्रमुखतः दो बार भेंट हुई। प्रथम बार बेतेल में, जहाँ उसने स्वर्ग तक पहुँचती हुई एक सीढ़ी का स्वप्न देखा, और जहाँ उसने कहा, "यह तो परमेश्वर के भवन को छोड़ और कुछ नहीं हो सकता" (उत्पत्ति 28:10-22)। दूसरी भेंट पनीएल में हुई जहाँ उसने परमेश्वर से मल्लयुद्ध किया और जहाँ उसने कहा, मैंने "परमेश्वर को आमने-सामने" देखा है (उत्पत्ति 32:24-32)। इन दोनों घटनाओं के मध्य बीस वर्षों का अन्तर है।

हम पढ़ते हैं कि बेतेल में उसने रुककर ठहरने का निश्चय किया, क्योंकि सूर्य अस्त हो गया था (उत्पत्ति 28:11)। हाँ यह अवश्य ही दिन का समय सूचित करता है जब याकूब बेतेल पहुँचा था। परन्तु जब हम (अगले चार अध्यायों में) उसका वृत्तान्त आगे पढ़ते हैं, तो पातें हैं कि सूर्य सचमुच उसके जीवन में अस्त हो चुका था। इस घटना के बीस वर्षों के उपरान्त तक यह अन्धकार गहनतम होता चला गया था। किन्तु यह कहानी का अन्त नहीं था।

पनीएल में, उसने परमेश्वर से पुनः भेंट की। और तब वहाँ लिखा है, कि सूर्य उदय हो गया, और वह यात्रा में आगे बढ़ गया (उत्पत्ति 32:31)। पुनः एक भौगोलिक तथ्य–किन्तु साथ ही याकूब के जीवन के विषय में एक सत्य। वह उस दिन से एक भिन्न व्यक्ति था। अन्धकार जा चुका था और परमेश्वर का प्रकाश उसके जीवन पर उदय हो चुका था।

परमेश्वर ने याकूब के अन्धकारमय जीवन का वृत्तान्त हमें यह दर्शाने के लिए दिया है कि वह एक साधारण व्यक्ति था। उसने भी हमारे जैसे अन्धकार का अनुभव किया। परन्तु साथ ही साथ उसे सूर्योदय का भी अनुभव हुआ। और इससे हम यह विश्वास करने को प्रोत्साहित होते हैं कि हमारे आत्म-केन्द्रित जीवन का अन्धकार चाहे कितना ही गहन क्यों न हो, तौभी यदि हम पनीएल में याकूब के पद-चिन्हों पर चलें, तो अब भी सूर्योदय होते हुए देख सकते हैं। तो फिर अब हम याकूब के जीवन पर

दृष्टिपात करें–प्रथम जब उसके जीवन में सूर्यास्त हुआ था; और द्वितीय जब उसके जीवन में सूर्योदय हुआ।

सूर्यास्त होना:

याकूब अपनी माता के गर्भ से, अपने भाई की एड़ी पकड़े हुए निकला। "और उसका नाम याकूब" (अर्थात् अड़ग्ड़ा मारनेवाला या बलपूर्वक छीनने वाला) रखा गया (उत्पत्ति 25:26)। वह वस्तुतः ऐसा था भी। वह सदैव अपने लिए किसी से कुछ न कुछ छीनता रहा। उसने अपने भाई से उसके पहिलौठेपन का अधिकार छीना और तदुपरान्त अपने पिता से उनकी आशिष। उसने राहेल को उसके पिता लाबान से छीना, और तत्पश्चात् साथ में लाबान की सम्पत्ति को भी छीन लिया।

याकूब सौदा करने वाला भी था। उसने एसाब के साथ पहिलौठेपन के लिए मोलभाव किया। और आगे चलकर, उसने लाबान से राहेल के लिए सौदा किया। बेतेल में यहाँ तक कि उसने परमेश्वर से भी मोलभाव किया। याकूब धोखा देनेवाला भी था। जब उसे अपने पिता की आशिष प्राप्त करने की इच्छा हुई, तो उसे पाने के लिए वह अपने पिता तक को धोखा देने को तत्पर हो गया। जब इसहाक ने उससे पूछा कि तुझे अहेर का मांस इतनी जल्दी कैसे मिल गया तो उसने उत्तर दिया, "तेरे परमेश्वर यहोवा ने उसको मेरे साम्हने कर दिया" (उत्पत्ति 27:20)। कितनी सहज रीति से उसने शपथ खाई और सरासर झूठ बोला! निश्चय ही उसमें परमेश्वर का भय तनिक नहीं था।

याकूब का स्वभाव ऐसा ही था–छीनना, मोलभाव करना और धोखा देना–पूरे समय अपनी ही सांसारिक इच्छाओं पर ध्यान देना। वह पूरी तरह आदम की सन्तान था।

परमेश्वर की बुलाहट से पिछड़ जाना:

अन्ततः बेतेल में, उसके जीवन में सूर्यास्त हुआ। वहाँ, स्वप्न में, परमेश्वर ने उसके जीवन के लिए अपने महान तथा महिमा-शाली ओजपूर्ण तेजस्वी अभिप्रायों का प्रकाशन दिया। उसने याकूब को वे ही

प्रतिज्ञाएं दीं जो उसने इब्राहीम को दी थीं। किन्तु याकूब का प्रत्युत्तर क्या था? उसने वास्तव में कहा, "प्रभु इन समस्त आत्मिक आशिषों में मेरी रूची नहीं है यदि केवल तू मुझे खतरे और हानि से बचाए रखे और मुझे खाने को भोजन और पहनने को वस्त्र दे, तो मैं बहुत सन्तुष्ट रहूँगा। मैं तुझे अपनी कमाई का दसवां हिस्सा दूंगा और तुझे अपना परमेश्वर मानूँगा।" (उत्पत्ति 28:20-22)।

अनेक मसीही इसी प्रकार के हैं। परमेश्वर उन्हें कोई महान और तेजस्वी बुलाहट देता है और वे इससे कहीं अधिक तुच्छ और निम्न बात में सन्तुष्ट हो जाते हैं। परमेश्वर उन्हें बुलाता है कि वे अपनी शक्ति उसके कार्य में खर्च करें, किन्तु वे पैसे कमाने और इस संसार में सम्मान खोजते हुए अपना जीवन व्यर्थ गंवाते हैं। परमेश्वर की सन्तानों में कितने कम हैं जो अपनी उच्च बुलाहट को पहचानते हैं। चार्ल्स स्पर्जन इनमें से एक थे। उन्होंने अपने पुत्र को चेतावनी दी, "मैं नहीं चाहूंगा कि यदि परमेश्वर तुम्हें मिश्नरी बनाना चाहे तो तुम राजा या लखपति बनने की मूर्खता करो। मसीह के लिए आत्माओं को जीतने की प्रतिष्ठा के आगे तुम्हारे राजा और कुलीन जन क्या हैं?"

जैसे याकूब के लिए-वैसे ही हमारे लिए परमेश्वर के अभिप्राय मात्र शारीरिक आशिषों से कहीं बढ़कर हैं। मूलतः उसके अभिप्राय दो हैं-प्रथम कि हम दूसरों पर मसीह का जीवन प्रगट करें; और द्वितीय, हम वहां जीवन पाने में दूसरों की सहायता करें। मसीही की यही बुलाहट है-और इस जगतीतल पर इससे बड़ी और कोई बुलाहट नहीं हो सकती। तौभी अनेक मसीही याकूब के समान इसे नहीं समझते-यहां तक कि वे भी जो मसीही कार्य में हैं। परमेश्वर उन्हें कोई आत्मिक वरदान या योग्यता देता है और शीघ्र ही वे उसमें ऐसे लीन हो जाते हैं कि वे अपने जीवनों के लिए परमेश्वर के अभिप्राय से बहुत दूर चले जाते हैं। वरदान उनके लिए ऐसा खिलौना बन जाता है जिससे बालक खेलते हैं। उनके ध्यान का वही केन्द्र हो जाता है और उसके परे वे कुछ देख ही नहीं सकते। शैतान ने कितने छल से उन्हें उनके मार्ग से अलग कर दिया है जिसे वे जानते तक नहीं।

याकूब अपने जीवन के लिए परमेश्वर के विशाल अभिप्राय को ग्रहण नहीं कर सका। जब परमेश्वर चाहता था कि उसे स्वर्गीय वैभव प्राप्त हो, तो वह खिलौनों से ही संतुष्ट हो गया। ऐसे संकीर्ण दर्शन का परिणाम यह हुआ कि परमेश्वर कि अभिप्रायों को याकूब के जीवन में पूर्ण होने में देर लगी। परमेश्वर को बीस वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी, तब कहीं याकूब ने इस संसार की वस्तुओं से अपना मन हटाकर ऊपर की बातों पर लगाया। कितने मसीही अपने जीवन के लिए परमेश्वर के ओजपूर्ण अभिप्रायों को विफल कर रहे हैं, तथा उसको पूर्ण करने में विलम्ब कर रहे हैं, क्योंकि उनका दर्शन संकीर्ण है और वे परमेश्वर के श्रेष्ठ को पकड़े रहने के बदले न्यून बातों से ही संतुष्ट हैं।

पौलुस विभिन्न व्यक्ति था। अपने जीवन के अन्त में वह यह कह सका कि उसने स्वर्गीय दर्शन की अवज्ञा नहीं की है। दश्मिक के मार्ग में, परमेश्वर ने उसे एक महान सेवकाई का दर्शन दिया था–कि वह लोगों की अन्धी आँखों को खोले और उन्हें सुसमाचार के द्वारा शैतान की शक्ति से छुड़ावे (प्रेरितों 26:16–19)। पौलुस परमेश्वर की बुलाहट से, समाज सेवा अथवा कम महत्त्व के कार्य में फंसकर कभी विचलित नहीं हुआ।

परन्तु जब उससे परमेश्वर ने बातें की तो याकूब का प्रत्युत्तर ऐसा नहीं था। अतएव उसके जीवन में सूर्यास्त हो गया और अन्धकार गहन और गहनतम होता चला गया। परन्तु अद्भुत बात यह है कि परमेश्वर ने उसे यों ही नहीं छोड़ दिया। परमेश्वर ने बेतेल में उससे प्रतिज्ञा की थी, "मैं अपने कहे हुए को जब तक पूरा न कर लूँ तब तक तुझको न छोडूंगा;" और परमेश्वर ने अपने प्रण का पालन किया। यही हमारे लिए उत्साह–वर्धक है कि परमेश्वर अपने हठी सन्तानों को यों ही छोड़ नहीं देता किन्तु निरन्तर इस प्रयत्न में लगा रहता है कि हम उसके श्रेष्ठ अभिप्रायों को पूर्ण करें।

ईश्वरीय अनुशासनः

याकूब को, अपनी प्रतिज्ञाएं पूर्ण करने हेतु परमेश्वर को कठोरता से अनुशासित करना पड़ा। अतएव कहानी के इस चरण से पनीएल में दोबारा

भेंट करने की घटना तक, अर्थात् बीस वर्षों तक परमेश्वर ने याकूब को ताड़ना दी ताकि वह उस स्थान पर आए जहाँ अपने जीवन के लिए परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ ग्रहण कर सकें।

सर्वप्रथम, परमेश्वर ने याकूब को अन्य चतुर व्यक्ति के साथ रखा। लाबान याकूब के समान ही प्रवीण था, और उनके एक साथ रहने तथा एक दूसरे के सम्पर्क में आने से, कई बार झगड़े की स्थिति आई और याकूब में कुछ सुधार आया। हमारे टेढ़ेपन से हमें सुधारने के लिए हमें कहाँ रखना चाहिए–यह परमेश्वर जानता है। परमेश्वर हमारी व्यक्तिगत आवश्यकता के अनुसार अपनी अनुशासनात्मक कार्यवाही उसी परिमाण में करता हैं; तथा वह ऐसा करता है कि सब बातें मिलकर हमारे लिए भलाई ही को उत्पन्न करें, उस समय भी जब उसने लाबान जैसे व्यक्ति को हमारे साथ रखा हो–शर्त यह है कि हम परमेश्वर के प्रबन्ध का प्रतिरोध न करें। परमेश्वर ने अनेक लोगों की अगुवाई की है कि वे अपने ही समान प्रकृति के साथी से विवाह कर पवित्रता के मसीही अनुभव में उतरें। "लोहा लोहे को चमका देता है" (नीति॰ 27:17), चाहे दोनों के घर्षण से कितनी ही चिनगारियां क्यों न उत्पन्न हों–लोहे के दोनों टुकड़े तेज हो जाते हैं।

याकूब ने कुछ बोया था अब अन्त में उसकी कटनी करना आरम्भ किया।

अपने पूरे जीवन भर उसने दूसरों को धोखा दिया था। अब उसने स्वतः धोखा खाया। वह इस विचार से कि राहेल से विवाह कर रहा है विवाहोत्सव में सम्मिलित हुआ, परन्तु अगले दिन प्रातःकाल उसे ज्ञात हुआ कि वास्तव में उसने लिआ से विवाह किया है। लाबान जैसे अपने समान व्यक्ति उसे मिला था! जो कड़वी दवाई वह अब तक दूसरों को बांट रहा था उसका स्वाद उसने स्वयमेव चखा। बिना अभिप्राय के परमेश्वर हमें मनचाहे अनुशासित नहीं करता। वह जानता है कि प्रत्येक को कितनी खुराक चाहिए और उसके अनुसार देता है। दयावन्त के साथ परमेश्वर स्वयं को दयावन्त और टेढ़े के साथ वह स्वयं को खरा दर्शाना है (भजन 18:25)। वह जानता है कि प्रत्येक याकूब के साथ किस प्रकार का व्यवहार करे।

याकूब की समस्याएं यहीं समाप्त नहीं हुई। चौदह वर्ष तक जान लड़ाने के उपरान्त उसने राहेल को पाया, केवल यही जानने कि वह बांझ है। परमेश्वर ने उस पर दया की और अन्त में उसके द्वारा उसे एक सन्तान दी, परन्तु इतने से भी याकूब में कोई परिवर्तन न आया। उसने इतने पर भी परमेश्वर पर विश्वास नहीं किया, किन्तु योजना बनाते रहा।

उसने अगली योजना बनाई कि लाबान की सम्पत्ति छीन ले। याकूब चतुर था। वह व्यापार की सब चालाकियां जानता था, और वह जानता था कि लाबान के पशुओं में से उत्तम को कैसे प्राप्त करे। परमेश्वर को कितनी प्रतीक्षा करनी पड़ी कि याकूब उस पर विश्वास रखना सीखे और अपनी मानवीय चतुराई त्याग दे! आज भी अपनी अनेक सन्तानों के साथ परमेश्वर की यही समस्या है। वह हमारी चतुराई से प्रभावित नहीं होता। इससे पहले कि वह अपनी इच्छा पूर्ति में हमें लगाए, वह इस प्रतीक्षा में रहता है कि हम इन बातों की मूर्खता को देख सकें।

अन्त में हम पाते है कि याकूब ने लाबान के पास से भागने की योजना बनाई। वह अपने ससुर के साथ रहते तगं आ गया और उसने जाना चाहा। किन्तु जब भागा, तो पाया कि अब उगले तो अन्धा निगले तो कोढ़ी। उसने सुना कि एक विशाल सेना के साथ एसाव उसके पास आ रहा है और लाबान भी उसका पीछा कर रहा है।

जो व्यक्ति परमेश्वर के अनुशासन से बच निकलने का प्रयत्न करता है उसे ज्ञात हो जाता है कि ऐसा करना सहज नहीं है। यदि याकूब ने स्थिति को परमेश्वर के हाथों में छोड़ा होता, तो परमेश्वर उसे अपने ही तरीके से लाबान से छुटकारा दिलाता। परन्तु याकूब ने परमेश्वर पर भरोसा रखना अब तक न सीखा था। स्वयं को आगे पीछे से घिरा हुआ पाकर और अपना जीवन खतरे में देखकर याकूब ने अब प्रार्थना आरम्भ की। उसने शीघ्र परमेश्वर को स्मरण दिलाया कि उसने उससे बेतेल में क्या प्रतिज्ञाएँ की थीं (उत्पत्ति 32:9-12)।

परन्तु केवल प्रार्थना ही याकूब के लिए पर्याप्त न थी। उसे विचार कर योजना भी बनाना था। उसने अत्यन्त चातुर्यपूर्ण योजना सोची कि यदि

परमेश्वर उसके प्रतिकूल परिस्थिति होने दे तो कम से कम अपने झुंड के आधे हिस्से को तो बचा ले–ऐसे कितने लोग हैं जो परमेश्वर पर भरोसा रखने और "विश्वास से जीने" की बात तो करते हैं, किन्तु पूरे समय उनके पास सुरक्षा का कोई न कोई सांसारिक स्त्रोत होता है, कि कहीं यदि अकेले विश्वास से ही काम न चले तो वे उसका आश्रय ले सकें! याकूब वस्तुतः हमारे ही सदृश्य व्यक्ति था। और कितनी ही बार हम पाते हैं, जैसे याकूब ने एसाब से भेंट करने पर पाया कि हमारा भय निराधार था, कि हमें योजना बनाने, चिन्ताकुल होने अथवा परमेश्वर पर संदेह करने की कोई आवश्यकता ही न थी।

एसाब का मन परमेश्वर के हाथों में था, और परमेश्वर उसे जिधर चाहे मोड़ सकता था। "जब किसी का चाल-चलन यहोवा को भावता है, तब वह उसके शत्रुओं का भी उस से मेल कराता है" (नीति० 16:7)। परमेश्वर ने स्पष्टतः याकूब से कहा था कि वह उसकी देख रेख करेगा। परन्तु याकूब परमेश्वर की प्रतिज्ञा पर विश्वास नहीं कर सका।

याकूब ने बीस वर्ष की लम्बी अवधि तक परमेश्वर के हाथों ताड़ना सही। सब कुछ जो याकूब ने सहा, हमारे लिए विस्तार-पूर्वक वर्णित नहीं है– परन्तु तौभी उसने कठिनाई से दिन काटे होंगे। धूप, कोहरे, वर्षा में बाहर काम करना, सोना–उसके लिए थका देनेवाला अनुभव रहा होगा। किन्तु याकूब की स्वतः परिपूर्णता और आत्म निर्भरता को चकनाचूर करने के लिए यह सब अत्यावश्यक था। अभी नहीं–किन्तु आगामी वर्षों में पीछे दृष्टि कर प्रसन्न हो परमेश्वर को उन अनुभवों के लिए सराह सकेगा। "वे तो अपनी-अपनी समझ के अनुसार थोड़े दिनों के लिए ताड़ना करते थे, पर यह (परमेश्वर) तो हमारे लाभ के लिए करता है, कि हम भी उसकी पवित्रता के भागी हो जाएं। और वर्तमान में हर प्रकार की ताड़ना आनन्द की नहीं, पर शोक ही की बात दिखाई पड़ती है, तौभी जो उसको सहते-सहते पक्के हो गए हैं, पीछे उन्हें चैन के साथ धर्म का प्रतिफल मिलता है" (इब्रा० 12:10-11)।

सूर्योदय होनाः

हमने विचार किया कि याकूब के जीवन में किस प्रकार सूर्यास्त हुआ था। आगामी बीस वर्षो तक अन्धकार किस प्रकार गहनतर होता चला गया। वह वस्तुतः हमारे ही सदृश्य तक साधारण व्यक्ति था। जैसे अनुपयोगी व्यक्ति में कोई अच्छाई देख सकता था, और उसने आशा का परित्याग किए बिना धैर्य-पूर्वक उसका पीछा किया। इसमें हम परमेश्वर की महानता तथा उसका अनुग्रह देखते हैं और इसी से हमें प्रोत्साहन मिलता है। हमारे पूर्णतः स्वार्थ-परायण होने पर भी परमेश्वर हमें घूरे में नहीं फेंक देता। वह हमारे साथ धीरज रखता है।

सम्भव है कि सन्तों के निरन्तर बचाए जाने के सिद्धान्त पर विश्वास न करें, परन्तु हम परमेश्वर पर विश्वास किए बिना नहीं रह सकते कि वह अपने विश्वासियों को कभी नहीं छोड़ता। जे. ऑसवल्ड चेम्बर्स ने कहा है, "परमेश्वर अपने चुने हुओं की अथक रक्षा करता है।" बेतेल में याकूब के लिए परमेश्वर की प्रतिज्ञा थी, "मैं अपने कहे हुए को जब तक पूरा न कर लू तब तक तुझको न छोड़ूँगा"–और यही प्रतिज्ञा हमारे लिए भी है। परमेश्वर हमारे साथ अपने व्यवहार में कितनी धीरजवन्त है–यह वोध कितनी विस्मय-जनक है तथा इससे हमें कितनी दीन नहीं बनना चाहिए! यदि वह ऐसा नहीं होता, तो हममें से किसी के लिए कोई आशा नहीं होती।

पनीएल में, परमेश्वर ने याकूब को अन्तिम घूसा दिया। उसने पिछले बीस वर्षों में, थोड़ा-थोड़ा करके याकूब को अनुशासित किया था तथा उसे तोड़ा था। किन्तु अब एक ही प्रहार से कार्य समाप्त करने का समय आ पहुँचा था। यदि परमेश्वर ने ऐसा न किया होता, तो याकूब पर सूर्योदय होते बीस वर्ष और लगे होते। हमारे आत्म-केन्द्रित जीवन को एक ही बार में सदा के लिए चकनाचूर कर देने का उचित समय परमेश्वर को ज्ञात रहता है।

परमेश्वर द्वारा आशिषितः

अन्ततः जब परमेश्वर ने याकूब को तोड़ा, तब ही उसे यथार्थतः आशिष प्राप्त हुई। लिखा है, "तब उसने (परमेश्वर ने) उसको वही

आशीर्वाद दिया" (उत्पत्ति 32:26)। मसीहियों की प्रार्थनाओं में "आशिष" शब्द का सम्भवतः सबसे अधिक प्रयोग होता है। किन्तु इने गिने ही उसका वास्तविक अर्थ समझते हैं।

आशीर्वाद क्या है? याकूब को कौन सी आशिष मिली? पद 28 के अनुसार–परमेश्वर और मनुष्यों के साथ सामर्थ ही इसका अर्थ है। इसी आशिष की आवश्यकता हम सबको है तथा इसके खोजी हमें बनना चाहिए केवल इसी से हमारे जीवनों में सूर्योदय हो सकता है। परमेश्वर की आकाँक्षा नहीं की अपने लोगों को इससे कुछ कम दे। यीशु ने इस आशिष की ओर संकेत किया जब उसने अपने शिष्यों को यरूशलेम में पिता की प्रतिज्ञा के लिए रूकने को कहा। उसने कहा, "जब पवित्र आत्मा तुम पर आएगा तब तुम सामर्थ पाओगे।" (प्रेरितों॰ 1:8)–परमेश्वर के साथ सामर्थ और मनुष्यों के साथ सामर्थ। तब याकूब जैसे लोग इस्राएल जैसे लोगों में परिवर्तित हो जाएँगे। इसी के कारण पतरस तथा अन्य शिष्यों के जीवन पर पिन्तेकुस्त के दिन सूर्योदय हुआ था।

हमारे आत्म-केन्द्रित जीवन के टेढ़ेपन का यही उत्तर हो सकता है। यहाँ हममें सुधार होने या अच्छी प्रतिज्ञाएँ कर लेने अथवा दृढ़ संकल्प करने का प्रश्न नहीं है। यहाँ हमारे जीवनों को पवित्र आत्मा द्वारा पूर्णतः अपना लेने, उस पर अधिकार एवं राज्य करने का प्रश्न है।

परन्तु आत्मा किस प्रकार आता है। सदैव क्रूस के द्वारा। जब हम क्रूस पर चढ़ते हैं, केवल उसी समय मसीह अपनी पूर्णता में हममें निवास कर सकता है। जब यीशु ने बपतिस्मा लिया, जल में गाड़ा गया–प्रतीकात्मक रूप से जब उसने मृत्यु को स्वीकार किया–तब ही पवित्र आत्मा उस पर उतरा (मत्ती 3:16)। जब याकूब टूटा तभी वह आशिषित हुआ। पिन्तेकुस्त के पूर्व सदा कलवरी का अनुभव अनिवार्य है। इससे पहले कि जीवनदायी जल का सोता फूट निकले चट्टानों को टूटना है। इत्र की शीशी का ढ़क्कन खुलना है इससे पहले कि उसकी सुगन्ध से सारा घर महक उठे। इस्राएलियों को कनान (आत्मा की परिपूर्णता के जीवन का प्रतीक) में प्रवेश करने से पहले यर्दन (मृत्यु एवं गाड़े जाने का प्रतीक) नदी को पार करना था। यह सत्य पूरे धर्मशास्त्र में है।

जो व्यक्ति टूटा न हो उसे सामर्थ देना स्वयं परमेश्वर के लिए खतरनाक होगा। यह तो तेज़ चाकू को छः मास के शिशु को पकड़ाने या बिना विद्युत धारा अवरोधक के 20,000 वोल्ट के विद्युत उपकरण पर हाथ रखने के सदृश्य होगा। परमेश्वर सावधान है। वह अपने आत्मा की सामर्थ उनको नहीं देता जिनमें स्वार्थ अब तक टूटा हुआ नहीं है। उस व्यक्ति में से भी वह अपनी सामर्थ हटा लेता है जो टूटा हुआ नहीं रह जाता।

याकूब को अब स्वयं परमेश्वर से आशीर्वाद मिला। इससे पूर्व उसे भोजन परोसने पर अपने पिता इसहाक की आशिष मिली थी (उत्पत्ति 27:23)। परन्तु इससे याकूब के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया था। पनीएल में उसे यर्थाथ आशिर्वाद प्राप्त हुआ। हमें भी यही शिक्षा लेनी चाहिए। यह आशिष हमें कोई व्यक्ति नहीं दे सकता। इसहाक जैसा कोई सन्त व्यक्ति हमारे सिर पर हाथ रख हमारे लिए प्रार्थना कर सकता है। तौभी हमें कुछ प्राप्त न हो–यह सम्भव है। केवल परमेश्वर ही यथार्थतः हमें सामर्थ दे सकता है। जब इसाहाक ने याकूब के सिर पर अपने हाथ रखे, तब याकूब के जीवन का केवल सूर्योस्त हुआ। किन्तु जब परमेश्वर ने उसे आशीर्वाद दिया तब सूर्योदय हुआ। सामर्थ परमेश्वर की है और केवल वही हमें दे सकता है।

लिखा है, "उसने (परमेश्वर ने) उसको वहीं आशीर्वाद दिया (उत्पत्ति 32:29) –वहीं, जहाँ याकूब ने कुछ शर्तों का पालन किया था और जीवन में निश्चित स्थान तक पहुँचा था। पनीएल में परमेश्वर ने याकूब को आशीष दी, इसके कारण थे।"

परमेश्वर के साथ एकान्त में:

सर्वप्रथम, याकूब को उस स्थान में आशिष मिली जहां वह परमेश्वर के साथ अकेले था। उसने सबको अलग भेज दिया और अकेले चला गया (उत्पत्ति 32:24)। 20 वीं शताब्दी के विश्वासियों को परमेश्वर के साथ एकान्त में अधिक समय व्यतीत करना कठिन जान पड़ता है। जेट–युग की आत्मा हममें से अधिकान्श में समाई है, और हम सतत रूप से व्यस्त स्थिति में हैं। समस्या हमारे स्वभाव व हमारी संस्कृति की नहीं हैं। समस्या

इतनी ही है कि किस बात को हमें कब प्रथम स्थान देना चाहिए, हम नहीं जानते।

यीशु ने एक बार कहा था कि विश्वासी के लिए जिस एक बात की घटी है वह यह कि वह उसके चरणों पर बैठकर उसकी सुने (लूका 10:42)। किन्तु अब हम उस पर विश्वास नहीं रखते अतः यीशु के वचनों की अवहेलना करने के दुष्परिणाम भोगते हैं। यदि हम निरन्तर अन्य कार्यों में व्यस्त रहें और प्रार्थना तथा उपवास में परमेश्वर के साथ एकान्तवास न जानें, तो परमेश्वर की सामर्थ एवं आशिष को कदाचित न जानेंगे–मेरा तात्पर्य यर्थाथ सामर्थ से है (दिखावटी सामर्थ से नहीं जिस पर अनेक अभिमान करते हैं।)

परमेश्वर द्वारा टूटनाः

द्वितीय, याकूब को उस स्थान पर आशीर्वाद मिला जहाँ वह पूर्णरूपेण टूटा। पनीएल में किसी पुरुष ने आकर याकूब से मल्लयुद्ध किया। परमेश्वर ने बीस वर्षों तक याकूब से मल्लयुद्ध किया था किन्तु याकूब ने हार नहीं मानी थी। परमेश्वर ने उसे दर्शाना चाहा था कि जितने कामों में उसने हाथ डाला था उसकी चतुराई तथा योजनाओं के होते हुए भी वे सब कार्य विफल रहे थे। किन्तु याकूब अब तक हठी था। अन्ततः परमेश्वर ने याकूब के जांघ की नस पर प्रहार किया जिससे उसके जाँघ की नस ऊपर चढ़ गई (पद 25)। जाँघ देह का सर्वाधिक पुष्ट अंग होता है, और उसी भाग पर परमेश्वर ने मारा।

हम जहाँ स्वयं को ताकतवर सोचते हैं वहीं परमेश्वर हमें चकनाचूर करने की सोचता है। पतरस ने एक बार सोचा कि आत्मिक रूप से उसमें अदम्य साहस है, यदि सब प्रभु का इन्कार करें तो करें, वह करने वाला नहीं था। अतएव परमेश्वर को उसे वहीं तोड़ना था। पतरस नें दूसरों से पहले ही प्रभु का इन्कार किया, वह भी एक बार नहीं तीन बार, उस समय तक जब एक छोटी नौकरानी ने उससे प्रश्न किया! पतरस को तोड़ने के लिए इतना ही पर्याप्त था। शारीरिक रूप से पतरस मछली पकड़ने में

कुशल था। यदि किसी बात में वह दक्ष था तो इसी मछली के धंधे में। अतएव परमेश्वर ने उसे यहां भी तोड़ा। पतरस ने सारी रात मछली पकड़ी और कुछ न पाया। और यह भी एक बार नहीं किन्तु दो बार हुआ (लूका 5:5; यूहन्ना 21:3)। परमेश्वर से उसे यह सिखाने के लिए कि वह कितना अयोग्य है जहां जहां वह शक्तिशाली था वहां-वहां तोड़ा।

शिष्यों को यह सीखते साड़े 3 वर्ष लगे कि मसीह के बिना वे कुछ भी नहीं कर सकते। हममें से कुछ के लिए तो इससे भी अधिक समय लग जाता है। परन्तु जिस परिणाम में हम उन वचनों की सत्यता को सीखते हैं, उसी परिणाम में हम परमेश्वर की सामर्थ को जान सकते हैं। जब पतरस जिन बातों में दृढ़ था उनमें टूट गया—जब परमेश्वर ने उसे उसकी "जांघ" पर मारा—तब ही वह पिन्तेकुस्त के लिए तैयार हुआ।

मूसा में नेतृत्व क्षमता थी तथा उसने मिस्र की समस्त विद्या अर्जित की—ये ही उसके जीवन में प्रबल बातें थीं। उसने सोचा कि वह इस्राएलियों का अगुवा बनने के योग्य है (प्रेरितों 7:25)। परन्तु परमेश्वर ने तब तक उसकी सहायता न की जब तक चालीस वर्ष व्यतीत न हुए, जब तक अपनी प्रबलतम बातों में वह आहत न हुआ। टूटने पर उसने कहा, "हे परमेश्वर, मैं इस प्रकार के कार्य के योग्य व्यक्ति नहीं हूँ... मैं अच्छा वक्ता नहीं हूँ... कृपाकर किसी और को भेज दे" (निर्ग॰ 2:11; 4:10, 13)। तब परमेश्वर ने उसे अपने हाथ में लिया और बलपूर्वक उसका प्रयोग किया। परमेश्वर को प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक हमारा आत्माभिमान तथा आत्म-विश्वास चूर-चूर नहीं हो जाता, जब तक हम टूटकर अपनी योग्यताओं पर गर्व करना नहीं छोड़ देते। तत्पश्चात् ही वह हमें स्वयं से परिपूर्ण करता है।

परमेश्वर के लिए भूखे होना:

तृतीय, याकूब को उस स्थान पर आशिष मिली जहाँ वह परमेश्वर के लिए लालायित एवं भूखा था। उसने कहा, "जब तक तू मुझे आशीर्वाद न दे, तब तक मैं तुझे जाने न दूंगा" (पद 26)। उन बीस वर्षों तक उन

वचनों को याकूब से सुनने के लिए परमेश्वर ने कितनी प्रतीक्षा की थी! जिसने अपना जीवन पहिलौठेपन, स्त्रियों, धन-सम्पत्ति को छीनने में व्यतीत किया था, उसी ने अब इन सबको जाने दिया और परमेश्वर को पकड़ लिया। यही वह बात थी जिसके लिए परमेश्वर ने याकूब के जीवन में निरन्तर प्रयास किया था। परमेश्वर को हार्दिक प्रसन्नता हुई होगी जब अन्ततः याकूब ने सांसारिक बातों पर से दृष्टि हटाकर स्वयं परमेश्वर की तथा उसकी आशिषों की अभिलाषा की। होशे 12:4 में लिखा है, कि उस रात पनीएल में याकूब रोया और उसने आशिष के लिए गिड़गिड़ाकर बिनती की। उस रात्रि में वह उनं गत वर्षों की अपेक्षा कितना भिन्न पुरुष था जब उसने केवल सांसारिक वस्तुओं की ही लालसा की थी। अन्त में परमेश्वर को याकूब के साथ अपने व्यवहार में सफलता मिली!

याकूब को पूर्णतः आशिष देने से पूर्व, परमेश्वर ने उसको परखा कि वह उत्सुक है अथवा नहीं। उसने याकूब से कहा, "मुझे जाने दे," यह परखने ने के लिए कि याकूब ने जितना प्राप्त किया है उतने से ही सन्तुष्ट है अथवा और अधिक पाने की उत्कंठा उसमें है। यह उसी प्रकार था जैसे अन्तिम वर्षों में एलिय्याह ने एलीशा की परीक्षा ली। एलिय्याह ने बार-बार कहा, "मुझे जाने दे," परन्तु एलीशा डगमगाया नहीं-अतः उसे एलिय्याह की दूनी आत्मा मिली (2 राजा 2)। यीशु ने उसी प्रकार इम्माऊस जाते हुए दोनों शिष्यों को परखा (लूका 24:15-32)। उनके घर पहुँचने पर, यीशु ने ऐसे दर्शाया मानों आगे बढ़ने को हो। परन्तु उन दोनों शिष्यों ने उसे बढ़ने न दिया- और परिणाम स्वरूप उन्हें आशिष मिली।

परमेश्वर हमें भी परखता है। वह किसी व्यक्ति को पूर्णरूप से तब तक आशिषित नहीं कर सकता जब तक वह व्यक्ति स्वतः परमेश्वर से सर्व श्रेष्ठ पाने का अभिलाषी न हो। हमें भी याकूब ने सदृश्य अतृप्त होना और कहना चाहिए, "प्रभु, आज तक मैंने जितना अनुभव किया है मसीही जीवन में उससे कहीं बढ़कर है। मैं संतुष्ट नहीं हूं। मुझे किसी भी मूल्य पर तेरी सम्पूर्ण परिपूर्णता चाहिए।" जब हम यहाँ तक पहुँचते हैं, तो परमेश्वर की सम्पूर्ण आशिष से अधिक दूर नहीं रह जाते।

पनीएल की घटना पर ध्यान दीजिए, जब याकूब निर्बल अवस्था में था (जब उसके जांघ की नस अपने स्थान से अगल हो गई थी), तब ही उसने कहा "हे परमेश्वर, मैं तुझे नहीं जाने दूंगा" परमेश्वर सहज ही उसे छोड़कर जा सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। क्योंकि जब व्यक्ति स्वयं में अति निर्बल होता है तब ही उसे परमेश्वर के साथ सर्वाधिक सामर्थ प्राप्त होती है। जैसे पौलुस प्रेरित ने कहा, "मैं बड़े आनन्द से अपनी निर्बलताओं पर घमण्ड करूँगा, कि मसीह की सामर्थ मुझ पर छाया करती रहे...क्योंकि जब मैं निर्बल होता हूँ, तभी बलवन्त होता हूँ" (2 कुरि॰ 12:9, 10)।

मानवीय दुर्बलता में परमेश्वर की सामर्थ सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से प्रदर्शित होती है। इसी प्रकार याकूब के साथ भी हुआ, जब उसने हार मान ली, जब वह टूट गया और पूर्णतः निर्बल हो गया, तब ही परमेश्वर ने उससे कहा, "तू अब प्रबल हुआ है।" कोई सोच सकता है कि परमेश्वर को अब कहना था, "अन्त में तेरी हार हुई है।" परन्तु नहीं। परमेश्वर ने कहा, "तू परमेश्वर से और मनुष्यों से भी युद्ध करके प्रबल हुआ है" (पद 28) हम प्रबल तब होते हैं जब परमेश्वर हमारे स्वतः की सामर्थ एवं आत्म-विश्वास में हमें चकनाचूर कर देता है। जैसे किसी गीत का अर्थ यह है, "प्रभु मुझे बन्दी बना, तब ही मैं स्वतन्त्र हो जाऊँगा।" मसीही जीवन का यह अनुपम विरोधाभास है।

यदि दुर्बलता का कहीं कोई चित्रण है, तो निश्चय ही क्रूस पर असहाय टंगे हुए व्यक्ति का है। मार खाकर, घुसे सहकर अन्त में मसीह क्रूस पर कीलों से ठोका गया, और उसने निर्बल एवं थकित अवस्था में प्राण त्यागे। किन्तु उसी समय वहाँ शैतान पराजित करने तथा मनुष्यों का छुटकारा करने में परमेश्वर की सामर्थ का दिग्दर्शन हुआ (इब्रा॰ 2:14; कुलु॰ 2:14, 15)। पौलुस ने कुरिन्थियों को लिखा, "क्रूस पर चढ़ाया हुआ मसीह परमेश्वर की सामर्थ है," "वह निर्बलता के कारण क्रूस पर चढ़ाया तो गया, तौभी परमेश्वर की सामर्थ से जीवित है, हम भी तो उसमें निर्बल हैं; परन्तु परमेश्वर की सामर्थ से जो तुम्हारे लिए है, इसके

साथ जीएंगे" (1 कूरि॰ 1:23, 24; 2 कुरि॰ 13:4) कुरिन्थुस के मसीहियों ने विभिन्न भाषा बोलने के वरदान को परमेश्वर की सामर्थ से परिपूर्ण होने का प्रमाण मान लिया था जो गलत था, अतएव पौलुस को उनकी भूल सुधारनी पड़ी। उसके कथन का सार यह था, "भाइयों, परमेश्वर की सामर्थ भिन्न-भिन्न भाषा बोलने के वरदान में नहीं देखी जाती। परमेश्वर का धन्यवाद हो यदि तुममें वह वरदान है। परन्तु कोई भूल न करो। परमेश्वर की सामर्थ केवल क्रूस ही में और क्रूस ही के द्वारा परिलक्षित होती है। मानवीय दुर्बलता ही में परमेश्वर की सामर्थ दिखाई देती है।"

मुझे स्मरण है, मैंने प्रभु के एक सेवक को यह बताते सुना कि परमेश्वर ने उसे आत्मिक सामर्थ का रहस्य किस प्रकार बताया। उसने बहुत समय तक परमेश्वर से चमत्कार-युक्त चिन्ह माँगा, तब अन्ततः परमेश्वर ने उससे पूछा, "तुमने अपने पापों की क्षमा किस प्रकार प्राप्त की?" उसने उत्तर दिया, "प्रभु मैंने पहचाना कि मैं इस जग का सबसे बड़ा पापी हूँ और तेरी दया के लिए मैंने तुझे पुकारा तब तूने मुझे क्षमा दी।" परमेश्वर ने कहा, "अच्छा तो अब स्वयं को संसार का सबसे निर्बल व्यक्ति समझ और तुझे मेरी सामर्थ मिलेगी।" क्रूस का मार्ग सामर्थ का मार्ग है। हम जिस परिमाण में उस पथ पर चलेंगे उसी के अनुसार अपने जीवन में परमेश्वर की सामर्थ प्राप्त करेंगे, तथा लोग हमारे जीवन एवं हमारी सेवकाई के द्वारा आशीष पाएंगे। पांच रोटियों के तोड़े जाने के पश्चात् ही जन समूह को भोजन मिलेगा, उससे पूर्व नहीं।

परमेश्वर के समक्ष ईमानदार होना:

अन्ततः याकूब को उस स्थान पर आशीर्वाद मिला जहाँ वह परमेश्वर के समक्ष ईमानदार था। परमेश्वर ने उससे प्रश्न किया, "तेरा नाम क्या है?" बीस वर्ष पूर्व, जब उसके पिता ने उससे यही प्रश्न किया था, तब उसने झूठ कहा था, "मैं एसाव हूँ" (उत्पत्ति 27:19)। परन्तु अब वह ईमानदार है। उसने कहा, ''हे परमेश्वर, मैं याकूब हूँ'' अथवा दूसरे शब्दों में, "हे परमेश्वर मैं छीनने-वाला, धोखा देनेवाला और मोल-भाव करने वाला हूँ।" अब याकूब में कोई कपट न था। और इसलिए परमेश्वर उसे आशिष दे सका।

जब यीशु ने नतनएल को देखा, तो आपको स्मरण होगा कि उसने कहा, "यह सचमुच इस्राएली है : (परमेश्वर का सच्चा राजकुमार) इसमें (याकूब) कपटी नहीं" (यूहन्ना 1:47)। यही परमेश्वर हममें भी देखने की प्रतीक्षा में है। केवल उसी समय वह हमें सामर्थ दे सकता है।"

परमेश्वर ने याकूब को वहाँ आशिष दी—जहाँ वह ईमानदार था, जहाँ उसने अधिक बहाना करना नहीं चाहा, जहाँ उसने अंगीकार कर लिया, "परमेश्वर, मैं पाखंडी हूँ। मेरे जीवन में कृत्रिमता और दिखावा है।" मैं आपको बताता हूँ कि ऐसा पूर्ण हृदय से कह सकने के लिए व्यक्ति को वास्तव में टूट कर अत्यन्त दीन होना पड़ता है। अनेक मसीही अगुवे इस प्रकार के शब्द झूठी नम्रता से—स्वयं के लिए दीन होने का सम्मान प्राप्त करने के लिए कहते हैं। मैं इस प्रकार के घृणास्पद कार्य के विषय में नहीं कह रहा हूँ। मेरा तात्पर्य उस ईमानदारी से है जिसका उद्भव दीन एवं टूटे हृदय से होता है। इसके लिए अत्यन्त त्याग आवश्यक है। हम सबमें प्रचुर मात्रा में कपट भरा हुआ है। परमेश्वर हम पर दया करे यदि हम पवित्र होने का दिखावा करते हों जबकि वास्तव में ऐसे नहीं हों। हम सच्चे मन से सच्चाई और ईमानदारी की कामना करें, तभी हमारे जीवनों में परमेश्वर की असीम आशिष होगी।

चढ़ता हुआ सूर्यः

याकूब टूट गया और उसके कारण वह इस्राएल बना। अन्ततः उसके जीवन में सूर्योदय हुआ। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि याकूब अब सिद्ध बन चुका था। सर्वदा के लिए एक ही बार में कोई ऐसा अनुभव नहीं होता जो सिद्ध होने का प्रमाण हो। परमेश्वर को उसे आगे भी अनुशासित करना पड़ा, क्योंकि अब भी उसके लिए सीखने को बहुत कुछ था। उत्पत्ति 33 और 34 में हम याकूब के कुछ आज्ञा उल्लंघन करने तथा भूल करने का वृत्तान्त पाते हैं।

किन्तु उसके जीवन पर सूर्योदय हो चूका था और उसने नए आत्मिक स्थान पर कदम रख लिया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब प्रकाश को

अधिकाधिक तेज़ होते जाना था, किन्तु ऐसा तब होगा जब सूर्य चढ़ते हुए आकाश में अपने मध्यान्ह की स्थिति पर पहुंचगा। बाइबल में लिखा है, "धार्मियों की चाल (सूर्य की) उस चमकती हुई ज्योति के समान है, जिसका प्रकाश (सूर्योदय से लेकर) दोपहर तक अधिक-अधिक बढ़ता रहता है" (नीति॰ 4:18)। याकूब के साथ भी ऐसा ही हुआ और हमारे साथ भी ऐसा ही होना चाहिए। यदि हम परमेश्वर के आधीन हो जावें और उसे इच्छानुसार करने दें, जैसे अन्त में याकूब ने किया, तो परमेश्वर का प्रकाश हमारे जीवन पर सतत् बढ़ता जायेगा। और उसके साथ ही साथ हमारे आत्म-केन्द्रित जीवन की छाया उस समय तक मिटती चली जायेगी जब तक सूर्य सिर पर न पहुंच जाए (मसीह का दोबारा आगमन हो ले) तब तक छाया सर्वथा लुप्त हो जायेगी और मसीह सर्वेसर्वा होगा।

पनीएल के अनुभव के विषय, आगामी वर्षों में याकूब की साक्षी क्या थी? वह सबको नहीं बताते फिरा कि अमुक-अमुक दिन उसने दूसरी आशिष प्राप्त की। नहीं। उसकी साक्षी सर्वथा भिन्न थी। इब्रानियों 11 अध्याय में याकूब की साक्षी क्या थी, इस ओर इंगित किया गया है। वहाँ, पुराने नियम के विश्वासी व्यक्तियों के कुछ साहसिक कार्यों का उल्लेख है- समुद्र को दो भाग में बाँटना, दृढ़ दीवारो को ढा देना, सिंहो के मुँह बन्द करना, मृतको को जिलाना, इत्यादि। याकूब का नाम भी सूची में है-और आपका विचार क्या है, उसके विषय में क्या लिखा है? "याकूब ने... अपनी लाठी के सिरे पर सहारा लेकर दण्डवत किया" (पद 21)।

कौतुक-पूर्ण घटनाओं से भरे हुए अध्याय में इस प्रकार का कोई विवरण देना बड़ा असंगत प्रतीत होता है! याकूब ने जो कुछ किया वह वास्तव में "विश्वास से किया गया आश्चर्य-कर्म" नहीं दिखाई देता। किन्तु वह था। सम्भवतः इस अध्याय में वर्णित अन्य आश्चर्य-कर्मों से वह बढ़ कर था। लाठी उसके लिए अत्यावश्यक हो गई थी। क्योंकि पनीएल में उसके जांघ की नस अपने स्थान से अलग हो गई थी। उस लाठी का सहारा ले, वह परमेश्वर के अपने जीवन में किए गए अनुग्रह के आश्चर्य-कर्म को सदैव स्मरण रखेगा कि किस प्रकार से परमेश्वर ने हठ

पूर्ण उसकी इच्छा-शक्ति को तोड़ा था! अब लाठी का सहारा लेना, उसकी असहाय स्थिति तथा प्रतिक्षण परमेश्वर पर आश्रित रहने का प्रतीक था। उसने टूटे हुए व्यक्ति के रूप में अब परमेश्वर को दण्डवत किया। उसने अपनी दुर्बलता पर घमण्ड किया—और यह उसकी दैनिक साक्षी थी। ऐसा ही पौलुस प्रेरित के साथ भी हुआ। सर्वयुगों में परमेश्वर के महान स्त्री-पुरुषों के साथ भी ऐसा ही हुआ है। उन्होंने अपनी कमियों पर प्रसन्नता व्यक्त की है अपनी उपलब्धियों पर नहीं। 20 वीं शताब्दी के अभिमानी, आत्म-विश्वासी मसीहियों के लिए यह कितना शिक्षाप्रद है।

जीवन के अन्तिम दिनों में, हम याकूब को भविष्यद्वक्ता के रूप में देखते हैं। उसने अपनी सन्तानों के भविष्य के सम्बन्ध में पहले से सूचित किया (उत्पत्ति 49)। केवल वही व्यक्ति भविष्यद्वाणी करने के योग्य है जो परमेश्वर के हाथ के नीचे रहा है तथा स्वयं को परमेश्वर के अनुशासनाधीन किया है। याकूब ने अनुभव से सीखा था। वह किसी सेमिनरी से योग्यता प्राप्त किया हुआ तत्वज्ञानी नहीं था। वह ताया गया था और उसने परमेश्वर के विश्वविद्यालय में योग्यता प्राप्त की थी। उसे परमेश्वर के गुप्त भेद ज्ञात थे। यथार्थतः वह परमेश्वर का राजकुमार था। परमेश्वर द्वारा शुद्ध होना कितनी अद्‌भुत बात है। उसका परिणाम कितने फलवन्त होने में होता है।

अन्त में, इस उत्साह-वर्धक बात पर जो पूरी बाइबल में है, ध्यान दीजिए। परमेश्वर स्वयं को इब्राहीम, इसहाक और याकूब का परमेश्वर कहता है, ("इस्राएल" का नहीं किन्तु "याकूब") का। यह वस्तुतः आश्चर्य-जनक है! वह याकूब का परमेश्वर है। उसने छीनने-वाले, धोखा देनेवाले, याकूब के साथ अपने नाम को जोड़ा है। यह हमारे प्रोत्साहन हेतु है। हमारा परमेश्वर विलक्षण व्यक्तित्व तथा कठिन प्रकृति के व्यक्तियों का भी परमेश्वर है। भजन रचियता के कथन में कितना अर्थ भरा हुआ है, "याकूब का परमेश्वर हमारा ऊँचा गढ़ है" (भजन॰ 46:7-11)। वह सेनाओं का यहोवा ही नहीं है, अपितु याकूब का परमेश्वर भी है। उसके नाम की प्रशंसा हो!

परमेश्वर ने हममें जिसे आरम्भ किया है उसे पूरा भी करेगा। सृष्टि–रचना में पिता का तथा हमारा उद्धार करने में पुत्र का काम जितना सिद्ध था, हमें शुद्ध करने में पवित्र–आत्मा का कार्य भी उतना ही सिद्ध होगा। "जिसने (हम में) अच्छा काम आरम्भ किया है, वही उसे यीशु मसीह के दिन तक (हम में) पूरा भी करेगा" (फिलि॰ 1:6)। वह हम में अपना कार्य पूर्ण करेगा, जिस प्रकार उसने अपना काम याकूब में पूरा किया। परन्तु जैसे पनीएल में याकूब ने, वैसे ही हमें भी प्रत्युत्तर देना चाहिए। यदि हम उससे सहयोग नहीं करेंगे, किन्तु अपने जीवन के उसके कार्य में बाधा डालेंगे तो अन्ततः उसके समक्ष हम दुखद, निरर्थक एवं फलहीन जीवन लिए खड़े रहेंगे। परमेश्वर चाहता है हम फलवन्त बनें, किन्तु वह हमें विवश नहीं करेगा। वह हमें मसीह की समानता में बदलना चाहता है, किन्तु वह हमारी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति की उपेक्षा कदाचित नहीं करेगा।

मसीह सदृश्य जीवन का पथ क्रूस के द्वारा–उस पर टूट जाता है अणु के टूटने से कितनी शक्ति निकलती है! परमेश्वर के हाथों टूटने पर परमेश्वर की सन्तान से कितनी सामर्थ निकल सकती है!

प्रभु हमें यह पाठ सिखाए और हमारे हृदयों पर इसे अंकित करे!

3

मसीह सदृश्य जीवन का मार्ग

(2) खाली होना

क्रूस के मार्ग के अन्तर्गत न केवल टूट जाने का ही अनुभव है किन्तु खाली होने का भी। पौलुस ने कहा, "अब मैं जीवित न रहा" उसने अपने आप को इस "मैं" से खाली कर दिया, ताकि मसीह उसमें निवास तथा राज्य करे। यहाँ तक कि यीशु ने भी स्वयं को खाली कर दिया जब वह परमेश्वर के सिंहासन से क्रूस की गहराइयों में उतरा (फिलि॰ 2:5-8)। यीशु मसीह और पौलुस के लिए क्रूस का जो महत्त्व था वही महत्त्व हमारे जीवनों में भी होगा।

खाली होने का क्या अर्थ है, इसे इस अध्याय में हम इब्राहीम के जीवन में देखेंगे। याकूब 2:23 में इब्राहीम को "परमेश्वर का मित्र" कहा गया है। वह उन व्यक्तियों में से था, जिन्हें नये नियम के युग में परमेश्वर के मित्र कहा जाता। क्रूस पर जाने से कुछ पहले यीशु ने अपने शिष्यों से कहा था, "जो कुछ मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, यदि उसे करो (जैसे इब्राहीम ने किया), तो तुम मेरे मित्र हो। अब से मैं तुम्हें दास न कहूँगा, क्योंकि दास नहीं जानता, कि उसका स्वामी क्या करता है: परन्तु मैंने तुम्हें मित्र कहा है, क्योंकि मैंने जो बातें अपने पिता से सुनीं, वे सब तुम्हें बता दीं" (यूहन्ना 15:14-15)।

नये नियम के इस युग में परमेश्वर की बुलाहट है, कि हम उसके दास ही नहीं अपितु उसके मित्र बनें, उसके गुप्त भेदों में सहभागी हों तथा उसके वचन के छिपे हुए रहस्यों को समझें। इब्राहीम इसी प्रकार का मित्र था। परमेश्वर ने अपने भेद उस पर प्रगट किए (उत्पत्ति 18:17-19)।

परमेश्वर ने इब्राहीम को प्रचुर आशीषें दीं। हमें बताया गया है कि "जो विश्वास करने वाले हैं, वे विश्वासी इब्राहीम के साथ आशिष पाते हैं" (गला॰ 3:9)। परमेश्वर ने इब्राहीम को किस आशिष से आशिषित किया? परमेश्वर ने इब्राहीम से प्रतिज्ञा की, "मैं...तुझे आशिष दूंगा" (उत्पत्ति 12:2)। परमेश्वर द्वारा आशिषित होने का क्या अर्थ है यह हमने पिछले अध्याय में देखा। परन्तु "मैं... तुझे आशिष दूंगा," करके ही परमेश्वर की प्रतिज्ञा समाप्त नहीं हो गई। उसने आगे कहा, "और तू आशिष का मूल होगा।"

परमेश्वर का सम्पूर्ण उद्देश्य इब्राहीम के लिए यही था तथा आज हमारे लिए भी यही है। हमें न केवल आशिष प्राप्त करना है किन्तु ऐसे साधन भी बनना है जिनके द्वारा यह आशिष दूसरों तक पहुंच सके। गलातियों 3:14 द्वारा स्पष्ट है कि आज हमारे लिए इब्राहीम की आशिष का सम्बन्ध पवित्र आत्मा के दान से है। पवित्र आत्मा ही वह है जो मसीह के बहुतायात का जीवन हमें देता है, तदुपरान्त वही जीवन हमारे द्वारा दूसरों तक पहुँचाता है।

याकूब 2:21-23 में, जहाँ इब्राहीम को परमेश्वर का मित्र कहा गया है, इब्राहीम के जीवन की दो घटनाओं का उल्लेख है:

1. उसका परमेश्वर पर विश्वास रखना जब परमेश्वर ने उसे बताया कि उसके एक पुत्र होगा (पद 23 जो उत्पत्ति 15:6 की ओर संकेत करता है)।
2. उसका परमेश्वर के कहने पर इसहाक को बलिदान चढ़ाना (पद 21 जो उत्पत्ति 22 की ओर संकेत करता है)।

इन दोनों घटनाओं को जो उत्पत्ति 15 और 22 में वर्णित है, इब्राहीम को परमेश्वर का मित्र कहते समय, याकूब ने एक साथ लिखा है। उत्पत्ति के इन दोनों अध्यायों में इब्राहीम के जीवन के दो महत्वपूर्ण समयों का

उल्लेख है। फिर इन दोनों अध्यायों में हम बाइबल में प्रथम बार आए दो महत्वपूर्ण शब्दों को पाते हैं–उत्पत्ति 15:6 में "विश्वास" तथा उत्पत्ति 22:5 में "दण्डवत"। बाइबल के विद्वानों ने हमें बताया है कि धर्मशास्त्र में प्रथम बार उल्लेख होने का भी नियम है। इसका सरल अर्थ यह है कि प्रथम बार जब बाइबल में कोई महत्त्वपूर्ण शब्द आता है तो जिस संदर्भ में वह शब्द आता है उसका कुछ न कुछ महत्त्व अवश्य रहता है। अतः धर्मशास्त्र के इन दोनों अध्यायों में विश्वास और दण्डवत अथवा आराधना के वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध में हमारे लिए बहुत कुछ शिक्षाएं हैं। इब्राहीम को भी ये दोनों बातें सीखनी पड़ी– परमेश्वर पर विश्वास रखना क्या है और उसकी आराधना करना क्या है। ये दोनों तभी सम्भव हैं जब हम क्रूस को ऐसे साधन के रूप में स्वीकार करें जिससे अपने आपको खाली कर सकें।

परमेश्वर पर विश्वास रखना:

इब्राहीम को सीखना पड़ा कि परमेश्वर पर भरोसा रखने का अर्थ न केवल बुद्धि से विश्वास कर लेना ही है, किन्तु इसका अर्थ यह भी है कि हम स्वतः को आत्म-निर्भरता तथा आत्म-संतोष से खाली कर लें।

उत्पत्ति 15 में (जहाँ पद 6 में "विश्वास" शब्द आया है) परिच्छेद का आरम्भ "इन बातों के पश्चात्..." (पद 1) शब्दों से हुआ है। पूर्व अध्याय जिसकी ओर यह वाक्यांश संकेत करता है, यह दर्शाता है कि वह इब्राहीम के जीवन में बड़ी विजय का समय था। केवल तीन सौ अठारह सेवकों को साथ लेकर उसने चार राजाओं की सेनाओं को पराजित किया था। इतना सब करने के उपरान्त भी उसने सदोम के राजा के समक्ष अत्यन्त शिष्टाचार का व्यवहार करते हुए, अपने परिश्रम के लिए कोई पुरस्कार लेने से इन्कार किया था। इन दोनों अवसरों पर परमेश्वर ने अनोखी रीति से उसकी सहायता की थी। अब विजय की घड़ी में, इब्राहीम के लिए स्वयं को बहुत कुछ समझना अत्यन्त सरल था।

ऐसे समय में, परमेश्वर ने इब्राहीम से बातें कर उसे बताया कि उसके एक पुत्र होने वाला है। न केवल इतना ही, किन्तु परमेश्वर ने यह भी कहा

कि उस पुत्र से ऐसा वंश उत्पन्न होगा जो संख्या में आकाश के तारागणों के सदृश्य होगा। यह सर्वथा असम्भव प्रतीत होता था, परन्तु इब्राहीम ने परमेश्वर पर विश्वास किया (उत्पत्ति 15:6)। जिस इब्रानी शब्द का यहाँ अनुवाद "विश्वास" किया गया है वह "अमान" है। इसी शब्द "आमीन" का हम अपनी प्रार्थनाओं के अन्त में प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ है "ऐसा ही हो।" जब परमेश्वर ने इब्राहीम को बताया कि उसका एक पुत्र होगा, तो उसने "आमीन" में उत्तर दिया, जिसका सार अर्थ था, "हे परमेश्वर, मैं नहीं जानता कि यह सब कैसे होनेवाला है। परन्तु चूंकि तूने यह कहा है, मैं विश्वास करता हूँ ऐसा ही होगा।"

परमेश्वर की प्रतिज्ञा पूरी होने में कठिन जान पड़ती थी क्योंकि सारा बांझ थी। हाँ, इब्राहीम निश्चय ही अब तक पुत्र उत्पन्न करने की क्षमता रखता था। अतएव आशा की कुछ झलक थी। दूसरे शब्दों में, वह प्रतिज्ञा एकदम असम्भव तो नहीं थी, किन्तु कठिन अवश्य थी।

कठिन स्थिति में परमेश्वर की सहायता करना:

परमेश्वर की प्रतीक्षा को सुनने के पश्चात् इब्राहीम ने स्वयंमेव तर्क कर कहा होगा, "हाँ, मैं सोचता हूँ कि सारा बाँझ है अत: इस स्थिति में मुझे परमेश्वर की सहायता करनी चाहिए।" अत: उसने सहर्ष सारा का यह सुझाव मान लिया कि अपनी लौंडी हाजिरा से सहवास करे। वह सचमुच परमेश्वर की सहायता करने को इच्छुक था। उसने सोचा कि परमेश्वर अब ऐसी प्रतिज्ञा करके, जो मानवीय दृष्टिकोण से पूर्ण नहीं हो सकती, बड़ी कठिन परिस्थिति में है। परमेश्वर के सम्मान का प्रश्न था। अतएव, परमेश्वर को ऐसी उलझन की परिस्थिति से बचने के लिए इब्राहीम ने हाजिरा से सहवास किया जिससे इश्माएल उत्पन्न हुआ। किन्तु इब्राहीम की इस सन्तान को परमेश्वर ने ग्रहण नहीं किया, क्योंकि यह मनुष्य के प्रयत्न का फल था।

वर्तमान समय में भी मसीही कार्य के लिए हमारे ध्येय इब्राहीम के समान हमारे शारीरिक रीति से तर्क करने के कारण होते हैं। विश्वासियों

से कहा जाता है कि परमेश्वर उनके प्रयत्नों पर आश्रित है और यदि वे अपना उत्तर दायित्व पूर्ण नहीं करेंगे तो परमेश्वर के उद्देश्य पूर्ण नहीं होंगे। परमेश्वर के उपाय के अनुरूप सब कुछ नहीं हुआ है अतः परमेश्वर कठिन स्थिति में है। मसीही सेवा के लिए ऐसा कुछ शिक्षाओं से ऐसा प्रभाव पड़ता है कि सर्वशक्तिमान की बुद्धि कुंठित हो गई है और उसे हमारी सहायता की बहुत अधिक आवश्कता है।

निःसन्देह परमेश्वर अपने अभिप्रायों की पूर्ती के लिए मानवीय साधनों का प्रयोग करता है। उसने स्वेच्छा-पूर्वक यह प्रतिबन्ध स्वीकार किया है, क्योंकि वह अपने कार्य में सहभागी बनाने का सौभाग्य हमें देना चाहता है। किन्तु निश्चय ही इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि हम परमेश्वर की आज्ञा का उल्लघंन करेंगे, तो उसका कार्य अधूरा रह जाएगा। नहीं, वह सर्वप्रधान है। इतना अवश्य है कि मसीह का कार्य है जिसे हम कर सकते है, किन्तु यदि हम नहीं करेंगे तो वह हमें छोड़ देगा और किसी अन्य को वही कार्य करने के लिए ले लेगा–इस प्रकार हम परमेश्वर के सहकर्मी बनने के सौभाग्य से वंचित रह जाएंगे परमेश्वर को उसके कार्यों को क्रियान्वित करने से तुच्छ मनुष्य नहीं रोक सकते।

परमेश्वर हमारी सहायता के बिना भी अपना कार्य सुचारू रूप से चला सकता है। हमें इस तथ्य को जानना चाहिए। यदि परमेश्वर के लिए हमारी सेवकाई इस भावना से प्ररित हो कि हम परमेश्वर को कठिन स्थिति से निकाल रहे हैं, तो हम इश्माएल उत्पन्न करेंगे जो स्वीकार जन्य नहीं होगा। ऐसी सेवकाई जिसकी जड़ें मानवीय शक्ति, ज्ञान, क्षमता एवं प्राकृतिक वरदानों में (चाहे वे सर्वश्रेष्ठ क्यों न हों) हो तो परमेश्वर को कदापि ग्रहणयोग्य नहीं हो सकती। इश्माइल अत्यन्त प्रवीण हो सकता है जो दूसरों पर अमिट प्रभाव छोड़ जाए इब्राहीम भी परमेश्वर से पुकारकर कह सकता है, "इश्माइल तेरी दृष्टि में बना रहे! यही बहुत है" (उत्पत्ति 17:18)। परन्तु परमेश्वर का उत्तर है, "इब्राहीम, नहीं, उसका जन्म तेरी शक्ति से हुआ इसलिए वह चाहे कितना भी अच्छा रहे में उसे ग्रहण नहीं कर सकता।"

ऐसा ही हमारे द्वारा प्रेरित सेवकाई से भी होता है। यदि हम अपनी मसीही सेवकाई को किसी न किसी मानवीय आधार पर समझा सकते हों—यदि वह धर्मशास्त्र के उत्तम प्रशिक्षण द्वारा हमारी तीक्ष्ण बुद्धि का परिणाम हो, अथवा हमने सेवा इसलिए की हो क्योंकि मसीही कार्य में रत स्वयं को सम्भालने के लिए हमारे पास पर्याप्त धन संचित हो—तो हमारा कार्य मनुष्यों की दृष्टि में चाहे जितना भी प्रभावकारी दिखाई दे, तौभी न्याय के दिन वह लकडी या घास या फूल के समान जल जाएगा। उस दिन "इसमाएलों" की भीड़ प्रगट हो जाएगी जिन्हें उन मसीहियों ने उत्पन्न किया जो स्वयं को ही पर्याप्त समझने से कभी खाली नहीं हुआ। अनन्त काल तक वही कार्य बना रहेगा जो परमेश्वर के पवित्र आत्मा की सामर्थ पर दीनता से अवलम्बित रहकर किया गया हो। मसीह के न्यायासन के समक्ष पछताने की अपेक्षा हम यह शिक्षा अभी ग्रहण करें—परमेश्वर हमारी सहायता करे!

विश्वास के कार्य:

हमारा आत्म-केन्द्रित जीवन इतना धूर्तता और धोखे से भरा होता है कि वह परमेश्वर के पवित्र स्थान में भी प्रवेश कर उसकी सेवा करने का प्रयास तक कर सकता है। हमें इसका ध्यान रखना है—और स्वार्थ को ध्वस्त करना है चाहे वह परमेश्वर की सेवा करने का प्रयत्न क्यों न करे।

परमेश्वर के कार्य को विश्वास का कार्य होना है—अर्थात, जो मनुष्य स्वयं को असहाय और परमेश्वर पर आश्रित जानकर करे। अतएव यह प्रश्न नहीं उठता कि दूसरे मनुष्यों की दृष्टि में अथवा अपनी ही दृष्टि में हमारा कार्य कितना प्रभावशाली है। प्रमुख प्रश्न यह है कि कार्य पवित्र आत्मा के काम करने का परिणाम है अथवा स्वतः हमारे परिश्रम का। परमेश्वर की रूचि इसमें इतनी अधिक नहीं कि काम कितना हुआ है, किन्तु इसमें है कि किसकी सामर्थ से काम करने की शक्ति प्राप्त हुई है। कार्य धन या बौद्धिक योग्यता की सामर्थ द्वारा पूर्ण हुआ है। अथवा पवित्र आत्मा की सामर्थ के द्वारा? आत्मिक कार्य की अथवा विश्वास के कार्य

की यह वास्तविक परख है। दूसरे शब्दों में परमेश्वर की रूचि इसमें नहीं कि कितना काम हुआ है लेकिन इसमें है कि कार्य किस प्रकार किया गया है। जिस प्रकार प्राचीन युग में, उसी प्रकार आज भी परमेश्वर का वास्तविक कार्य मानवीय शक्ति अथवा सामर्थ से नहीं, किन्तु पवित्र आत्मा की सामर्थ के द्वारा जारी है (जकर्याह 4:6)। हम इस सत्य को भूल कर स्वयं को ही संकट में डालते हैं।

मानव की असमर्थता-परमेश्वर का अवसर:

इसहाक की उत्पत्ति इसमाएल के समान इब्राहीम की शक्ति से नहीं हुई थी, क्योंकि उस समय तक इब्राहीम में भी सन्तानोत्पन्न करने की क्षमता नहीं रह गई थी। अशक्त इब्राहीम को परमेश्वर ने शक्ति दी इसीलिए इसहाक का जन्म हुआ। इसी प्रकार की सेवा अनन्तकाल तक बनी रहती है। एक "इसहाक" सहस्त्रों "इश्माएलों" से श्रेष्ठ है। अन्त में सब "इसमाएलों" को निकाल देना पड़ेगा। इब्राहीम कुछ समय के लिए इश्माएल को रख सका किन्तु अन्ततः परमेश्वर ने उससे उसको निकाल देने को कहा (उत्पत्ति 21:10-14)।

केवल इसहाक ही उसके साथ रह सकता था। यहाँ एक आत्मिक शिक्षा है। हमारे द्वारा परमेश्वर के कार्य करने से उत्पन्न सेवकाई ही, अनन्तकाल तक बनी रह सकेगी। बाकी सब कुछ जल जाएगा। ऐसा कहते आपने सुना होगा, "केवल एक ही जीवन है जो शीघ्र समाप्त हो जाएगा, मसीह के लिए जो कुछ किया गया है केवल वही बचा रह जाएगा।" यह कहना अधिक सही होगा, "मसीह मेरे द्वारा जो कुछ करेगा केवल वही बचा रह जाएगा।" परमेश्वर पौलुस में जीवित था तथा उसके द्वारा कार्य कर रहा था (गल॰ 2:20; कुलु॰ 1:29)। इसी कारण उसका जीवन तथा कार्य इतना प्रभावशाली रहा। वह विश्वास से जीवित था तथा विश्वास से कार्य करता था।

उत्पत्ति 16:16 में हम पढ़ते हैं कि जिस समय हाजिरा ने इसमाएल को जन्म दिया उस समय इब्राहीम 86 वर्ष का था। अगले ही पद

(उत्पत्ति 17:1) में हम पढ़ते हैं कि इब्राहीम 99 वर्ष का था जब परमेश्वर ने उसको फिर अपना दर्शन दिया। यहाँ तेरह वर्षों का अन्तर है। ये वे वर्ष थे जिनमें परमेश्वर ने इब्राहीम के शक्तिहीन बन जाने की प्रतीक्षा की। परमेश्वर अपनी प्रतिक्षा इब्राहीम के अशक्त होने तक पूर्ण नहीं कर सकता था। परमेश्वर अपने समस्त सेवकों के साथ ऐसा ही व्यवहार करता है। वह उनके द्वारा तब तक कार्य नहीं कर सकता जब तक वे अपनी अशक्त स्थिति को नहीं पहचान लेते। और कुछ परिस्थितियों में, उसे अनेक वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

परमेश्वर पर विश्वास रखने का वास्तविक अर्थ क्या है यह इब्राहीम को सीखना पड़ा। उसे सीखना पड़ा कि जब तक वह अशक्त न बन जाए तब तक वह विश्वास का आचरण नहीं कर सकता। रोमियों 4:19:21 में हम पढ़ते हैं कि यद्यपि इब्राहीम को ज्ञात था कि उसकी देह पुत्र उत्पन्न करने में भरी हुई है, तौभी इससे उसे चिन्ता नहीं हुई।

वह विश्वास में बलवन्त था तथा उसने यह विश्वास कर परमेश्वर को महिमा दी, कि परमेश्वर ने जो प्रतिज्ञा की है उसे पुर्ण करने में वह पूरी तरह समर्थ है। वह विश्वास में नहीं डगमगाया, क्योंकि अपने लिए कहे गए परमेश्वर के वचन में उसके पग स्थिर थे। किन्तु इब्राहीम विश्वास का पालन कब कर सकता था? केवल तब ही जब स्वत: की योग्यता पर से उसका विश्वास पूर्णत: उठ जाता। हम भी विश्वास का क्रियान्वयन तभी कर सकते है जब स्वयं को पूर्णत: असहाय स्थिति में पाएं। यह परमेश्वर का तरीका है, ताकि कोई भी मनुष्य उसकी उपस्थिति में कभी गर्व न कर सके।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम कुछ नहीं करते। परमेश्वर नहीं चाहता हम निष्क्रिय बनें। यह तो दूसरी भूल होगी। परमेश्वर ने इसहाक को उत्पन्न करने के लिए इब्राहीम का प्रयोग किया। परमेश्वर ने यह स्वयमेव नहीं किया, क्योंकि इब्राहीम से अलग, किसी कुंवारी के गर्भ से इसहाक ने जन्म नहीं लिया। किन्तु इश्मायल के जन्म तथा इसहाक के जन्म में अन्तर था। दोनों घटनाओं में, इब्राहीम पिता था। किन्तु पहली घटना

में, उसने स्वयं की शक्ति पर भरोसा रखा और दूसरी घटना में उसने परमेश्वर की सामर्थ पर भरोसा रखा। अन्तर इतना ही था... किन्तु कितना भारी!

शरीर पर तनिक भरोसा नहीं:

प्रतीक्षा के तेरह वर्षों बाद, जब परमेश्वर ने इब्राहीम को दर्शन दिया, तब उसने उसे खतने की वाचा दी (उत्पत्ति 17:11)। खतने के अन्तर्गत मनुष्य के शरीर का काटा जाना तथा अलग करना सम्मिलित हैं। यह स्वत: पर पूर्ण भरोसा रखने को त्याग देने का प्रतीक है। फिलिप्पियों 3:3 में पौलुस ने खतने का अर्थ समझाया है। उसने वहाँ कहा, "खतनावाले तो हम ही हैं...और शरीर पर भरोसा नहीं रखते।"

ध्यान दीजिए, कि जिस वर्ष इब्राहीम ने परमेश्वर की आज्ञा मानी और स्वत: का खतना किया, उसी वर्ष इसहाक का जन्म हुआ (उत्पत्ति 17:1 और 21:5 की तुलना कीजिए)। यहाँ भी हमारे लिए शिक्षा है। परमेश्वर उस समय तक ठहरा रहता है जब तक हम स्वत: पर तथा स्वयं की योग्यताओं पर भरोसा रखना नहीं त्याग देते। और जब अन्तत: हम उस स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ यह जान लेते है कि हम स्वयं होकर न परमेश्वर की सेवा कर सकते हैं न ही उसे प्रसन्न कर सकते हैं (रोमि॰ 8:8), और जब हम परमेश्वर पर भरोसा रखते हैं कि वह हममें होकर कार्य करे, तब वह हमें अपने हाथ में लेकर हमारे द्वारा अनन्त कार्य करता है। 85 वर्ष की आयु में सन्तान का जन्म इब्राहीम को कठिन प्रतीत होता था। जिस समय वह 99 वर्ष का हुआ और उसमें उत्पन्न करने की क्षमता न रही, तब जो कुछ कठिन था वह अब असम्भव जान पड़ने लगा। तब परमेश्वर ने कार्य किया। किसी ने कहा है कि परमेश्वर के सच्चे कार्य के तीन चरण होते हैं–कठिन, असम्भव एवं पूर्ण! मानवीय बुद्धि के लिए इस प्रकार का तर्क स्वीकार करना कठिन होता है, क्योंकि आत्मिक सत्य स्वाभाविक मन को मूर्खता जान पड़ता है। किन्तु यही परमेश्वर का मार्ग है।

कोई भी मनुष्य चाहे अभी अथवा अनन्तकाल में परमेश्वर के समक्ष कभी शेखी नहीं बघार सकता। परमेश्वर के कार्य उस दिशा में हो रहे हैं

जब अन्ततः मसीह सब बातों में सर्वप्रधान होगा (कुलु॰ 1:18)। यदि स्वर्ग में अनन्तकाल तक टिके रहनेवाला कोई कार्य हो जो मानवीय युक्ति एवं चतुराई के बल पर सम्पन्न हुआ हो, तो अनन्तकाल लों उनका श्रेय कुछ मनुष्यों का होगा। किन्तु परमेश्वर निश्चय ही ऐसा नहीं होने देगा। मानवीय प्रशंसा के समस्त कार्य मसीह के न्यायासन के समक्ष जल जाएंगे। इस धरती पर, मनुष्य अपने किन्हीं कार्यों के लिए प्रशंसा प्राप्त कर सकते है, किन्तु अनन्तकाल में कदम रखने से पूर्व ही उनका मूल्य घटकर राख रह जाएगा। इन दिनों में किसी न किसी दिन, परमेश्वर सब कुछ को मसीह में एकत्र करेगा, तत्पश्चात् अनन्त युग तक अकेले मसीह ही सर्वप्रधान होगा।

श्रीमती जेसी पेन-लूइस परमेश्वर की भक्त महिला थीं। उनके लेखों द्वारा अनेक मसीहियों ने विश्वासी जीवन में क्रूस के गहन अर्थ को समझा है। उनकी जीवनी में लिखा है कि उनके जीवन का कोई समय ऐसा भी था, जब कुछ वर्षो तक परमेश्वर की सेवा करने के उपरान्त उन्हें अपने परिश्रम के कार्यों से असंतोष हुआ। उनका नया जन्म हो चुका था, किन्तु उन्हें अनुभव हुआ कि उनको पवित्र आत्मा से परिपूर्ण होने की भी आवश्यकता है। अतएव उन्होंने परमेश्वर से बिनती की। एक दिन, प्रार्थना के समय, उन्होंने एक दर्शन देखा कि एक हाथ गंदे चिथड़ों का गट्ठर पकड़े हुए है। एक स्वर सुन पड़ा, "अब तक मेरे लिए की गई तुम्हारी सेवा का यही परिणाम है।" वह विस्मित रह गई। उनका तो नया जन्म हो चुका था। उन्होंने स्वयं को परमेश्वर को अर्पित कर दिया था।

निश्चय ही यह उनके परिश्रम की तस्वीर नहीं थी। किन्तु परमेश्वर ने उन्हें दिखाया कि उन्होंने अपने आत्म-केन्द्रित जीवन का ही परमेश्वर को समर्पण किया था और आत्म-केन्द्रित जीवन केवल गंदे चिथड़ों का ही उत्पादन कर सकता है। और तब प्रभु ने उससे बातें कीं कि उसे क्रूस पर चड़ने की आवश्यकता है। प्रारम्भ में इसे स्वीकार करना उसके लिए कठिन था। तौभी उसने ऐसा ही किया। परिणाम स्वरूप, उसके जीवन से जीवन के जल की नदियां फूट पड़ीं, जिनसे विश्व के अनेक भागों में सहस्त्रों स्त्री-पुरूषों को आशिष एवं स्फूर्ति मिली। वास्तव में उसने

इब्राहीम की आशिष प्राप्त की—और अनेक देशों के लोग उसके द्वारा आशिषित हुए।

स्वार्थ को क्रूस पर चढ़ना है, इससे पहले कि हमारी सेवा परमेश्वर को प्रसन्न करे। हम सम्पूर्ण हृदय से परमेश्वर की सेवकाई कर कह सकते हैं, "प्रभु, तू इन इश्माएलों को जिनको मैंने जन्म दिया है, कृपाकर ग्रहण कर। परन्तु परमेश्वर कहेगा, नहीं! वह अभी नहीं कहेगा तथा अनन्तकाल में भी नहीं कहेगा।"

पवित्र आत्मा पर निर्भर रहना:

हम स्वयं को एक ही स्थल पर—प्रार्थना के श्रेत्र में परखें। क्या हम वस्तुत: ऐसी प्रार्थना करना जानते हैं, जिसे बाइबल में "विश्वास की प्रार्थना" कहा गया है? जब हम सर्वथा हताश हो जाते हैं, तभी ऐसा कर सकते है क्योंकि डॉ॰ ओ॰ हेल्सबी ने कहा है, प्रार्थना केवल अपनी असहाय अवस्था को परमेश्वर के सामने मान लेना है। सुन्दर, प्रभावशाली, और चित्ताकर्षक प्रार्थना करने से कोई लाभ नहीं। ऐसी सामान्य प्रार्थनाएं कोई भी कर सकता है—अन्यजाति भी।

किन्तु विश्वास की प्रार्थना वही कर सकता है जिसने यह पहचान लिया हो कि परमेश्वर के बिना वह पूर्णत: अशक्त एवं असहाय है। "आत्मा में प्रार्थना" करने (इफि॰ 6:18) का भी यही अर्थ है; और केवल इसी प्रकार की प्रार्थना का ही उत्तर मिलता है। किसी ने कहा है, वर्तमान समय में हमारी आवश्यकता अधिक प्रार्थना करने की नहीं अपितु प्रार्थनाओं के अधिक उत्तर पाने की है। हम अन्यजातियों के सदृश्य, स्वयं की आँखों में धूल न झोंकें; यह विचार न करें कि हमारे अधिक प्रार्थना करने से परमेश्वर को आनन्द होगा। नहीं। प्रार्थना का परमेश्वर के निकट कोई मूल्य नहीं, यदि वह हमारी असमर्थता को ध्यान में रखते हुए न की गई हो।

आधुनिक युग में इवेंजेलिकल मसीही कार्य का बहुत कम अशं ही विश्वास का कार्य है। हमारे पास इतने अधिक उन्नत साधन हैं जिनसे प्रभु

की सेवकाई में हम सहायक होते हैं, जिनके कारण हममें से अनेक प्रभु पर निर्भर रहने के बदले इन्हीं उपकरणों पर अनजाने ही आश्रित रह जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दिनों, प्रभु की सेवा के लिए पवित्र आत्मा से परिपूर्ण होने की किसी को आवश्यकता नहीं। आवश्यकता केवल इन्हीं की है: टेप-रिकार्डरों, चल चित्र, प्रोजेक्टरों तथा कुछ मसीही चल चित्रों, अन्य-दृश्य सामग्रियों, तथा व्यवसाय में रत कुञ्चित धनी व्यक्तियों की जो आर्थिक सहायता कर सकें। यदि इनके साथ ही किसी में अभूत-पूर्व व्यक्तित्व और वाक्‌पटुता अथवा गाने की मधुर राग हो, तो वह बाहर जाकर "मसीह के लिए आत्माओं को जीत सकता है!"

प्रेरितों के विश्वास से इवेंजेलिकल मसीहियत कितनी दूर हो गई है! कितना दुखद विषय है कि व्यापार जगत की विधियों को परमेश्वर के पवित्र स्थान में लाया जा रहा है। इन विधियों की ऊपरी सफलताओं से हम धोखे में न आएं। हम गणना कर सकते हैं कि हमारे द्वारा कितनों का "जीवन परिवर्तन" हुआ है किन्तु अनन्तकाल में ही हम पहचानेंगे कि वे यर्थाथ नहीं थे। हमारे परिश्रम पर स्वर्ग में आनन्द नहीं है क्योंकि हमने मनुष्यों को उनकी आत्म-केन्द्रित स्थिति से नहीं छुड़ाया है, किन्तु एक मात्र उनका मन बहलाव ही किया है।

परमेश्वर का मार्ग नहीं बदला है। किन्तु आज यदि हमें परमेश्वर को प्रसन्न करने योग्य "इसहाकों" को जन्म देना है, तो आत्मा-संतोष से खाली होकर परमेश्वर की आत्मा से परिपूर्ण होना है। बाइबल में लिखा है, "स्रापित है वह पुरुष जो मनुष्य पर भरोसा रखता है, और उसका सहारा लेता है, जिसका मन यहोवा से भटक जाता है। वह निर्जल देश के अधमूए पेड़ के समान होगा" (यिर्म॰ 17:5, 6)। चाहे ऐसे व्यक्ति दूसरों पर अपने फलवन्त होने का कितना ही दिखावा क्यों न करें, वे सूखे वृक्ष के समान अनन्तकाल में खड़े रहेंगे, क्योंकि उनके कार्य उन्हीं के द्वारा उत्पन्न हुए, उन्होंने मानवीय शक्ति एवं स्रोता पर भरोसा रखा, दूसरी ओर लिखा है, "धन्य है वह पुरुष जो यहोवा पर भरोसा रखता है, जिसने परमेश्वर की अपना आधार माना हो। वह उस वृक्ष के समान होगा जो नदी के तीर पर

लगा हो और उसकी जड़ जल के पास फैली हो... उसके पत्ते हरे रहेंगे और... वह... फलता रहेगा" (यिर्म॰ 17:7, 8)।

अब दूसरा उदाहरण (1 कुरि॰ 3:10–15) लें तथा यह प्रश्न करें कि हम क्या बना रहे हैं? काठ, घास और फूस अथवा सोना, चांदी या बहुमोल पत्थर? अग्नि का कार्य समाप्त हो चुकने पर एक टन घास फूस से एक औंस सोना कहीं बढ़कर है। न्याय के उस दिन में केवल विश्वास का यर्थाथ कार्य ही बचा रह जाएगा।

स्वयं का अन्तः

इडिथ शेफर ने अपनी पुस्तक एल आबरी में लिखा है कि परमेश्वर ने उसके पति फ्रांसीस शेफर तथा उनके साथियों को किस प्रकार बारम्बार पूर्णतः असहाय स्थिति में पहुँचाया। अनेक बार उन्होंने स्वतः को उदासीन पाया। सुसमाचार विरोधियों की विजय अनेक स्थानों पर निश्चित जान पड़ती थी। अपनी निर्बलता में उन्होंने परमेश्वर की ओर दृष्टि की कि वह उनकी ओर से कार्य करे। और उसने किया–केवल एक या दो बार नहीं किन्तु अनेक बार। इसी प्रकार का–विश्वास का कार्य–अनन्तकाल तक बना रहेगा।

काम कितना बड़ा है इससे परमेश्वर प्रभावित नहीं होता। संसार आकार तथा संख्या पर ध्यान देता है किन्तु परमेश्वर विश्वास के कार्यों पर दृष्टि लगाए है चाहे वे आकार में राई के दानों के बराबर ही क्यों न हों।

अतएव जब परमेश्वर हमें ऐसी स्थिति में पहुँचाता है जहाँ हम असहाय हों, चहुँ ओर निराशा से घिरे हों, हमारी आशाएं चकनाचूर हो गई हों, तो हम हिम्मत न हारें! इस स्थिति पर लाने से वह हमें अधिक उपयोगी बनाने के लिए तैयार करता है कि हम अनेक इसहाक उत्पन्न कर सकें।

यीशु ने अपने प्रेरितों को अपनी सेवा के लिए इसी प्रकार तैयार किया। साढ़े तीन वर्ष तक उनको प्राशिक्षण देने का उसका क्या अभिप्राय था–इस सम्बन्ध में आपका मत क्या है? वे विद्धता-पूर्ण लेख (थीसिस) लिख सकें कि उनमें से प्रत्येक को डॉक्टर की उपाधि मिले–यह उनकी

शिक्षा का ध्येय नहीं था। कुछ लोगों का विचार है कि इसी प्रकार वे प्रभु की सेवा के लिए तैयार हो सकते हैं। किन्तु यीशु ने इसलिए अपने प्रेरितों को प्रशिक्षण नहीं दिया। प्रयत्न करने पर भी उसके बारह शिष्यों में से कोई भी (सम्भवतः सिवाय यहूदा इस्करियोति के), (हमारे स्तर के अनुसार) थियोलॉजी की उपाधि पाने योग्य नहीं होता। यीशु ने मुख्यतः एक ही पाठ सिखाने के लिए उन्हें प्रशिक्षण दिया कि, उसके बिना वे कुछ भी नहीं कर सकते (यूहन्ना 15:5)। और मैं कहूँगा कि जिस व्यक्ति ने यह पाठ सीख लिया हो वह थियोलॉजी के सौ प्राध्यापकों से बढ़कर है जिन्होंने अब तक यह पाठ नहीं सीखा है।

परमेश्वर पर पूर्णतः अवलम्बित रहना परमेश्वर के सच्चे सेवक का लक्षण है। प्रभु यीशु मसीह के विषय में भी यह सच था, जब वह यहोवा के सेवक के रूप में पृथ्वी पर था। यशायाह 42:1 में भविष्यद्वाणी कर उसके सम्बन्ध में लिखा है, परमेश्वर ने कहा, "मेरे दास को देखो जिसे मैं संभाले हूँ।" वह अपनी शक्ति में खड़ा नहीं होता; उसे परमेश्वर संभाले रहता है। मसीह ने यहाँ तक स्वयं को खाली कर दिया, इसीलिए परमेश्वर ने उस पर अपने आत्मा को रखा, जैसे अगले अध्याय में लिखा है (यशा॰ 42:2)। वस्तुतः जो स्वतः को निरूपाय समझते हैं जिन्होंने स्वयं पर भरोसा रखना तथा अपने आप को सब कुछ समझाना छोड़ दिया है, उन्हीं पर परमेश्वर अपना आत्मा उंडेलता है।

हम कुछ असाधारण वक्तव्यों पर, जिन्हें यीशु ने कहे, ध्यान देंगे जिनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह स्वतः से कितना खाली था:

"पुत्र आप से कुछ नहीं कर सकता" (यूहन्ना 5:19)।

"मैं अपने आप से कुछ नहीं कर सकता" (यूहन्ना 5:30)।

"मैं...अपने आप से कुछ नहीं करता" (यूहन्ना 8:28)।

"मैंने अपनी ओर से बातें नहीं कीं, परन्तु पिता जिसने मुझे भेजा है उसी ने मुझे आज्ञा दी है, कि क्या-क्या कहूँ? और क्या-क्या बोलूं" (यूहन्ना 12:49)।

"ये बातें जो मैं तुम से कहता हूँ, अपनी ओर से नहीं कहता" (यूहन्ना 14:10)।

आश्चर्य है! परमेश्वर के सिद्ध, निष्पाप पुत्र को विश्वास से जीना पड़ा। उसने स्वतः पर भरोसा रखने से अपने आप को खाली कर दिया तथा अपने पिता पर पूर्णतः भरोसा रखा। इस प्रकार के जीवन के लिए परमेश्वर हमें भी बुलाता है।

जब हम स्वतः को पर्याप्त समझते हैं, तो हम परमेश्वर का प्रयोग उसकी सेवकाई में अपनी सहायता के लिए करने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु जब हम खाली हो जाते हैं, तो परमेश्वर हमारा प्रयोग कर सकता है। परमेश्वर के महान सन्त, ए० बी० सिम्पसन ने, जिन्होंने क्रिश्चियन मिश्नरी अलायेन्स की स्थापना की, हमें बताया है कि उन्होंने अपने जीवन में यह पाठ किस प्रकार सीखा। नवयुवक पास्टर के रूप में, उन्होंने अपनी ही शक्ति से परमेश्वर की सेवकाई में परिश्रम किया, जब तक उनका स्वास्थ्य बिगड़ नहीं गया। अन्ततः उनकी भेंट इस प्रकार परमेश्वर से हुई कि उनका मसीही सेवा का सम्पूर्ण दृष्टिकोण ही परिवर्तित हो गया। अब तक वह परमेश्वर का प्रयोग करता रहा था। किन्तु आगे उसने परमेश्वर को अपना प्रयोग करने दिया।

परमेश्वर पर भरोसा रखने का यही अर्थ है। यही वह प्रथम पाठ था जिसे इब्राहीम को सीखना पड़ा।

परमेश्वर की आराधना करना:

दूसरा पाठ जिसे इब्राहीम को सीखना पड़ा वह था आाराधना का सच्चा अर्थ। यदि परमेश्वर पर भरोसा रखने का अर्थ है आत्म-विश्वास और आत्म-संतोष से स्वयं को खाली कर देना, तो परमेश्वर की आराधना करने का अर्थ है सर्वस्व से (जिसमें स्वतः की सम्पत्ति भी सम्मिलित है) स्वयं को खाली कर देना।

जैसे उत्पत्ति 15 में, वैसे ही उत्पत्ति 22 में भी परिच्छेद का आरम्भ इस वाक्यांश से होता है, "इन बातों के पश्चात्...।" यहाँ भी, परीक्षा की

इस घड़ी से पूर्व परिस्थिति पर दृष्टि डालने से हम इब्राहीम को विजयी की अवस्था में पाते हैं। अन्यजातियों ने उसके पास आकर कहा था, "इब्राहीम, हम तेरा जीवन देखते रहे हैं और हम जानते हैं कि परमेश्वर तेरे सब कार्यों में तेरे साथ है" (उत्पत्ति 21:22)। निस्सन्देह उन्होंने सुना था कि कितनी आश्चर्य-जनक रीति से सारा के पुत्र उत्पन्न हुआ था और उन्हें निश्चय था कि परमेश्वर इस परिवार के संग है। इश्माएल बाहर निकाल दिया गया था। अब इसहाक इब्राहीम का लाडला था। ऐसे समय पर इब्राहीम को अत्याधिक खतरा था कि कहीं वह परमेश्वर के प्रति अपना प्रथम प्रेम तथा अपनी भक्ति न छोड़ दे। अतएव परमेश्वर ने पुनः उसकी परीक्षा ली, और उससे इसहाक को बलिदान चढ़ा देने को कहा।

बलिदान और आराधना:

क्या हमने इस प्रकार के कठिन कार्यों के लिए परमेश्वर की बुलाहट कभी सुनी है? या क्या हम पूरे समय उसे अपनी प्रतिज्ञाओं द्वारा स्वयं को शान्ति देते हुए सुनते हैं? ऑस्वल्ड चेम्बर्स ने कहा है कि यदि हमने अपने लिए परमेश्वर को कठोर वचन कहते कभी नहीं सुना है, तो यह संदेहास्पद है कि हमने यथार्थतः परमेश्वर की कभी सुनी भी है या नहीं। हमारे शारीरिक मनों के लिए यह कल्पना करना अत्यन्त सहज है कि परमेश्वर पूरे समय हमसे शान्तिदायक प्रतिज्ञाओं में बातें कर रहा है। चूंकि हम कठिन मार्ग नहीं चाहते, अतः जब परमेश्वर हमें कठिन कार्य के लिए बुलाता है तब हम उसकी अनसुनी कर सकते हैं।

किन्तु इब्राहीम के कान सुनने के लिए, तथा उसका मन परमेश्वर की किसी भी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार था। वह अगले दिन प्रातः अत्यन्त शीघ्र उठा और परमेश्वर की मानने के लिए निकल पड़ा (पद 3)। कहानी में यह नहीं बताया गया है कि उस पूर्व रात्रि में, परमेश्वर के उससे बातें कर चुकने के पश्चात् उस पर क्या बीती। मुझे निश्चय है उसने वह रात आँखों ही में काटी होगी। उसने जागते रहकर बार-बार जाकर अपने हृदय के टुकड़े को देखा होगा, और इस विचार से कि अब उसके साथ

क्या करना होगा उसके नेत्रों से अविरल अश्रु धारा बही होगी। अपनी वृद्धावस्था के पुत्र को बलिदान चढ़ा देना इब्राहीम के लिए कितना दुष्कर रहा होगा। किन्तु वह किसी भी मुल्य पर परमेश्वर की आज्ञा मानने के लिए तैयार था। लगभग पचास वर्षों पूर्व उसने हल पर अपना हाथ रखा था जब ऊर में परमेश्वर ने उसे बुलाया था और अब वह पीछे फिरकर देखनेवाला नहीं था।

उसने तनिक असंतोष प्रगट नहीं किया न ही कोई प्रश्न किए। इब्राहीम ने यह नहीं कहा, "हे परमेश्वर मैं अब तक कितना विश्वास–योग्य रहा हूँ। फिर तू क्यों इतने कठिन कार्य की आकाक्षा मुझसे करता है?" न ही उसने कहा, "हे परमेश्वर, मैंने अब तक कितना अधिक बलिदान किया है–उन सब से अधिक जो मेरे चहुं ओर रहते हैं। अब तू और अधिक बलिदान मुझसे क्यों चाहता है?'' अनेक विश्वासी अपने जीवन में किए गए त्याग की तुलना दूसरों के जीवन से करते हैं। तथा वे संकोच करते हैं जब परमेश्वर उनसे उनके चहुं ओर के लोगों की अपेक्षा अधिक त्याग करने को कहता है। किन्तु इब्राहीम ने ऐसा नहीं किया। उसका आज्ञापालन सीमित नहीं था न ही परमेश्वर के लिए बलिदान चढ़ाने की उसकी इच्छा का कोई अन्त था। कोई आश्चर्य नहीं कि वह परमेश्वर का मित्र बना।

इसहाक को बलिदान चढ़ाने के लिए ऊपर जाते समय इब्राहीम के मन में यह विश्वास था कि परमेश्वर किसी न किसी प्रकार से उसके पुत्र को मृत्यु से जिलाएगा। इब्रानियों 11:19 से हमें यह ज्ञात होता है। परमेश्वर ने पहले से ही इब्राहीम को इसहाक के जन्म के द्वारा उसकी और सारा की देह में पुनरुत्थान की सामर्थ का पूर्वस्वाद दिया था। अवश्य ही ऐसे परमेश्वर के लिए एक इसहाक को जो वेदी पर बध किया जाए, पुनः जीवित करना कोई समस्या न थी। अतः इब्राहीम ने अपने सेवकों से उनको मोरिय्याह पहाड़ के नीचे छोड़ते समय कहा, "यह लड़का और मैं वहां तक जाकर, और दण्डवत् करके, (उसके साथ) फिर तुम्हारे पास लौट आऊँगा" (पद 5)। यह विश्वास का वचन था। उसे विश्वास था कि इसहाक उसके साथ वापिस लौटेगा।

इस पर भी ध्यान दीजिए कि उसने अपने सेवकों से कहा, ''हम परमेश्वर को दण्डवत् करने जा रहे हैं।'' न उसने कोई असंतोष दर्शाया कि परमेश्वर उससे बहुत अधिक मांग रहा है, न ही उसने अपने आश्चर्य-जनक बलिदान के सम्बन्ध में जिसे वह परमेश्वर के लिए करने पर था कोई डींग हांकी। नहीं। इब्राहीम उनकी गणना में नहीं था जो अत्यन्त चतुराई से अपने जीवन में परमेश्वर के लिए किए गए बलिदानों की ओर दूसरों का ध्यानाकृष्ट करते हैं। इब्राहीम ने कहा कि यह अपने परमेश्वर को दण्डवत् करने जा रहा है। और वहाँ हम आराधना का यथार्थ अर्थ समझते हैं।

स्मरण कीजि़ए यीशु ने एक बार किस प्रकार कहा, ''इब्राहीम मेरा दिन देखने की आशा से बहुत मगन था; और उसने देखा, और आनन्द किया'' (यूहन्ना 8: 56)। निश्चय ही यहीं इसी मोरिय्याह पहाड़ पर इब्राहीम ने मसीह का दिन देखा होगा। भविष्य के दर्शन में, वृद्ध इब्राहीम ने स्वतः के कार्य में उस दिन का चित्रण (चाहे वह कितना ही धूमिल रहा हो) देखा जब परमेश्वर पिता स्वयं अपने एकमात्र पुत्र को कलवरी पहाड़ पर ले जाएगा और उसे मानव-मात्र के पापों के लिए बलिदान कर देगा। और उस दिन मोरिय्याह पहाड़ पर इब्राहीम को बोध हुआ कि भटके हुए संसार को बचाने के लिए परमेश्वर के हृदय पर क्या बीतेगी। उस दिन प्रातः काल वह परमेश्वर के हृदय से प्रगढ़ संगति करने के स्थान पर पहुंचा। हाँ उसने परमेश्वर की आराधना की-न केवल सुन्दर वचनों और गीतों से, किन्तु अमूल्य आज्ञापालन और बलिदान से।

केवल इसी प्रकार के आज्ञापालन द्वारा परमेश्वर का गहरा और आत्मीय ज्ञान होता है। हम अपने मनों में परमेश्वर सम्बन्धी सही-सही जानकारी प्रचुरता से संचित कर सकते हैं, किन्तु यथार्थ आत्मिक ज्ञान केवल तब ही प्राप्त होगा जब व्यक्ति अपना सर्वस्व परमेश्वर कौ न्यौछावर कर देगा। अन्य कोई मार्ग नहीं है।

दाता अथवा उसका दान?

इब्राहीम को यहाँ परखा जा रहा था कि वह देनेवाले को अधिक चाहता है अथवा उसके दान को चाहता है। कोई संदेह नहीं कि इसहाक

परमेश्वर का दान था, किन्तु इब्राहीम अपने पुत्र के प्रति अतिशय प्रेम रखने के खतरे में था। इसहाक उसके लिए ऐसी प्रतिमा बनाने लगा था जो इब्राहीम के आत्मिक दर्शन में अवरोध बने। अतः परमेश्वर ने इसी मध्य इब्राहीम को ऐसे दुखान्त से बचाने के लिए कार्य किया। 'परसूट ऑफ गॉड' नामक पुस्तक में डा॰ ए॰ डब्ल्यू॰ टोज़र ने कुछ भी न अपनाने की आशिषमय स्थिति का वर्णन किया है। मोरिय्याह पहाड़ पर परमेश्वर इब्राहीम को यह सिखा रहा था कि सर्वस्व से खाली हो जाना तथा कुछ भी न अपनाना कितना आशिषमय है।उस दिन से पूर्व, इब्राहीम का इसहाक के प्रति व्यवहार इस प्रकार का था मानो वह उसी का हो, उस पर उसका पूरा अधिकार हो ओर वह सदैव उसे अपनाए रखे।

किन्तु अपने पुत्र को वेदी पर रखने, तथा परमेश्वर को दे देने के उपरान्त उसका इसहाक के प्रति ऐसा दृष्टिकोण नहीं रह गया। हाँ, परमेश्वर ने इसहाक को वापिस इब्राहीम को अवश्य दे दिया, और इब्राहीम ने उसे अपने साथ ही अपने घर में रखा। किन्तु उसने इसहाक को अपना ही समझकर नहीं अपनाया। इसहाक, उस दिन से परमेश्वर का था। और इब्राहीम ने इसहाक को ऐसे रखा जैसे कोई भंडारी अपने स्वामी की सम्पत्ति को रखता है। दूसरे शब्दों में, उसके साथ इसहाक था, किन्तु उसने पुनः उस पर अपना अधिकार नहीं रखा यह सोचकर कि वह उसका ही है।

संसार की समस्त वस्तुओं के प्रति हमारा यही दृष्टिकोण होना चाहिए। हम उन्हें रख सकते हैं तथा उनका प्रयोग कर सकते हैं। किन्तु उनमें से किसी को हमें कदापि जकड़े नहीं रखना है। सब कुछ जो हमारा है वेदी पर परमेश्वर को पूर्णतः समर्पित किया जाना चाहिए। हमें कुछ नहीं अपनाना चाहिए। तदुपरान्त वेदी पर से हम वापिस की गई वस्तुओं को ही हम रख सकते हैं—वह भी केवल एक भन्डारी के रूप में। केवल तब ही हम परमेश्वर की यथार्थ आराधना कर सकते हैं। मसीही जीवन की महिमा का यही मार्ग है।

यह सिद्धान्त केवल सांसारिक वस्तुओं ही पर लागू नहीं होता। यह आत्मिक वरदानों पर भी लागू होता है। हमारे लिए यह सम्भव है कि हम

पवित्र आत्मा के वरदानों पर भी अपना अधिकार समझकर उसे जकड़े रहें। क्या इसहाक परमेश्वर का दान नहीं था? तो फिर इब्राहीम उसे कसकर पकड़े क्यों नहीं रख सका? इश्माएल को भेज देना समझ में आने योग्य बात थीं, क्योंकि वह प्रतिज्ञा की सन्तान न था। किन्तु इसहाक की बात ही दूसरी थी। वह परमेश्वर की सामर्थ से उत्पन्न, परमेश्वर का दान था। उसे भी इब्राहीम को दे देना क्यों पड़ा?

और इसी प्रकार हम भी तर्क कर सकते हैं। संसार की वस्तुओं के प्रति अपना लगाव त्याग देने की बात हम समझ सकते हैं। किन्तु निश्चय ही हम सोचते हैं कि परमेश्वर द्वारा स्वयं प्रदत्त वरदानों को हम जकड़े रख सकते हैं। किन्तु परमेश्वर कहता है, "नहीं, (मेरे द्वारा प्राप्त) आत्मिक वरदानों को भी तुम वेदी पर चढ़ा दो और उन्हें मुझे वापिस कर दो, कहीं ऐसा न हो कि वे तुम्हारे जीवन में आच्छादित होकर मेरे दर्शन में बाधक बनें।" परमेश्वर की यह इच्छा है कि उसने हमें आत्मा के जो पवित्रतम वरदान दिए है उनके प्रति भी अतिशय लगाव से हम छुटकारा पा जाएं। वह चाहता है कि "इसहाकों" को भी जिन्हें हमने (अपने उपवास और प्रार्थना के उत्तर में) उससे पाया है उसे बलिदान कर दें और उनमें से किसी को जकड़े न रखें। क्या हमारे युग के अनेक अच्छे विश्वासियों ने भी यही नहीं देखा है? उन्होंने अपने "इश्माएलों" को त्याग दिया है परन्तु अपने "इसहाको" को नहीं छोड़ा है। परमेश्वर के दिए हुए वरदानों को उन्होंने अपनी ही महिमा के लिए प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है–उस उड़ाऊ पुत्र के सदृश्य, जिसने अपने पिता के दानों को लेकर अपने ही ऊपर खर्च किया।

हमारी आँखों के आगे, सतत क्या छाया रहता है– हमारे वरदान और हमारी सेवकाई, अथवा स्वयं इनको देनेवाला? हमें निरन्तर स्वतः से यह प्रश्न करते रहना है। जब परमेश्वर हमें सर्वाधिक आशिष देता है तथा हमारा वृहत् रूप से प्रयोग करता है तभी हम सबसे अधिक खतरे में होते हैं। ऐसे समय में परमेश्वर का दर्शन खो देना अत्यन्त सरल है। हमें मोरिय्याह पहाड़ की वेदी पर वारम्बार वापिस जाने की आवश्यकता है। हमें जिम येलीयट के सदृश्य प्रार्थना करने की जरूरत है, "हे प्रभु, मृट्ठी

में कसकर पकड़े और जकड़े रहने से मुझे बचा मुझे कलवरी के कीलों को ग्रहण करने के लिए खुले हाथ दे।"

यही सच्ची आराधना है—जहां देने वाला परमेश्वर स्वयं हमारे हृदयों एवं दर्शन में छाया रहता है। तब हम सुरक्षित रीति से इन वरदानों का प्रयोग कर सकते हैं। अन्यथा हम परमेश्वर के वरदानों का दुरुपयोग करेंगे और स्वार्थ सिद्धि के लिए उनका प्रयोग करेंगे। हमारे युग में पवित्र आत्मा के वरदानों का इतना अधिक दुरुपयोग क्यों होता है? क्या यही कारण नहीं– कि अनेक मसीहियों की दृष्टि उनके वरदान की तरह छाए हुए हैं कि उन्होंने देनेवाले की दृष्टि ही खो दी है?

वह जो हमारे लिए अमूल्य हो:

इब्राहीम की श्रद्धा उस दिन परखी गई जब परमेश्वर ने उसे इसहाक को बलि चढ़ाने को कहा। यदि परमेश्वर ने इब्राहीम से 10,000 भेड़ी या 5,000 भेड़ की मांग की होती तो इब्राहीम के लिए इतना बलिदान अति सहज होता। किन्तु एक इसहाक जो उसका सर्वस्व तथा उसकी दृष्टि में अमूल्य था, उसने उसी को चढ़ाने का संकल्प किया और परमेश्वर ने जो कुछ मांगा था उसने कम देना न चाहा। वर्षोपरान्त कहे गए दाऊद के वचनों को इब्राहीम कह सकता था, "मैं अपने परमेश्वर यहोवा को सेंतमेंत के होमबलि नहीं चढ़ाने का" (2 शमू॰ 24:24)। हाँ, जो हमारे लिए सब कुछ है उसे चढ़ा देना सच्ची आराधना के अन्तर्गत आता है।

संयोगवश ऐसा हुआ कि मोरिय्याह पहाड़ के इसी स्थल पर (जहाँ इब्राहीम ने इसहाक का बलिदान किया) यबूसी ओर्नान का खलिहान भी स्थित हुआ जहाँ दाऊद ने उक्त उद्धृत शब्दों को कहा था। और अन्त में, सुलैमान ने भी ठीक इसी स्थल पर अपना विख्यात मन्दिर बनवाया (2 इति॰ 3:1)। इस स्थान को, जहाँ उसके दो सेवकों (इब्राहीम और दाऊद) ने बहुमूल्य बलिदान चढ़ाया, परमेश्वर ने अपना भवन होने के लिए ठहराया। यही वह स्थान था जहाँ स्वर्ग से आग गिरी और यही पर परमेश्वर का तेज प्रगट हुआ (2 इति॰ 7:1)। ऐसा ही आज भी होता है। परमेश्वर उसी स्थान पर अपनी सच्ची कलीसिया बनाता है तथा अपना

तेज प्रगट करता है जहाँ वह ऐसे स्त्री पुरुषों को पाता है जो स्वतः का त्यागकर उसे अपना सर्वस्व तथा सर्वश्रेष्ठ अर्पित करने को तैयार रहते हैं।

क्या अपनी मसीहियत के लिए हमने कुछ त्याग किया है? क्या परमेश्वर के लिए हमारी सेवकाई एकदम सरल, सस्ती वस्तु है जिससे हमारी आत्मा को कोई वेदना नहीं होती? क्या हमारे प्रार्थना के जीवन में कुछ त्याग है? परमेश्वर के लिए हम कहाँ तक बलिदान चढ़ाना चाहते हैं, क्या इसकी हमने कोई सीमा खींच दी है? क्या हम चैन और शान्ति की खोज में रहते हैं? अथवा क्या हम अब भी इस आशा में हैं कि हमारे जीवनों में आग गिरे और परमेश्वर का तेज दिखाई दे? हम स्वयं को धोखे में न डालें। सम्पूर्ण मन से स्वतः को परमेश्वर को समर्पित करने के द्वारा ही पवित्र आत्मा की परिपूर्णता प्राप्त हो सकती है।

क्रूस का मार्ग कठिन है। स्वतः अपने पुत्र के वध करने का विचार ही इब्राहीम के लिए कितना यातना-पूर्ण रहा होगा। हमारे परमेश्वर के पक्ष में होने के कारण अपने बाल-बच्चों को कष्ट सहते देखना हमारे लिए सहज नहीं है। इसके लिए हमें अत्यन्त त्याग की आवश्यकता है। किन्तु हम यदि इसके लिए भी तैयार हैं तो आशिषित हैं। परमेश्वर किसी व्यक्ति का ऋणी नहीं। यदि हमने परमेश्वर का आदर किया है, तो वह निश्चय ही हमारा भी आदर करेगा; और हम अपने बच्चों को भी परमेश्वर का अनुसरण करते पाएंगे, जिस प्रकार से इसहाक इब्राहीम के पद-चिन्हों पर चला। वेदी पर बंध जाने के लिए तथा बध होने हेतु तैयार हो जाना ही इस बात का सूचक है कि इसहाक में अपने पिता के परमेश्वर के प्रति कितनी श्रद्धा थी।

यदि इसहाक स्वतः तैयार नहीं होता तो उसके दृढ़ एवं पुष्ट नौजवान होने के कारण उसका वृद्ध पिता उसे कभी वेदी से नहीं बाँध पाता। किन्तु इसहाक ने अपने पिता के जीवन में परमेश्वर की वास्तविकता को देखा था अतएव वह भी परमेश्वर की इच्छा के आगे नतमस्तक हो जाने को तैयार था।

दूसरी ओर कितने ही विश्वासी ऐसे हैं जिन्होंने अपने बालकों की किन्ही सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु मसीही सिद्धान्तों से समझौता

किया है तथा अपने उच्च स्तरों को छोड़ दिया है—परिणाम-स्वरूप उन्हीं के बच्चों ने उनके हृदयों को तोड़ा है और अपना जीवन संसार को समर्पित किया है। यह कितना दुखद अन्त है!

स्वर्ग के श्रेष्ठ प्रतिफल उन्हीं के लिए सुरक्षित हैं जिन्होंने इब्राहीम के कदमों पर चलकर, उसके सदृश्य परमेश्वर से कुछ नहीं रख छोड़ा है—चाहे इसके लिए उन्हें कितना ही मूल्य क्यों न चुकाना पड़ा हो।

मैंने एक जवान अमेरिकाी पति-पत्नि की कहानी सुनी थी जो इससे पहले कि कम्यूनिस्टों ने चीन पर आधिपत्य जमा लिया, वहाँ मिश्नरी होकर गए। उन्होंने अपने मिशन बोर्ड से आग्रह किया था कि उन्हें ऐसे क्षेत्र में भेजा जाए जहाँ सुसमाचार नहीं पहुँचा था। उसी के अनुसार उन्हें तिब्बत के निकटवर्ती क्षेत्र में भेजा गया था। उन्होंने विश्वास-योग्यता से वहाँ सात वर्षों तक अथक परिश्रम किया, किन्तु एक भी आत्मा को उद्धार पाते नहीं देखा। परमेश्वर ने उन्हें एक छोटी बच्ची का दान दिया। और जैसे-जैसे वह बालिका बढ़ती गई उन्होंने अपने नेत्रों के समक्ष एक आश्चर्य-कर्म होते देखा। उन्होंने वहाँ की स्थानीय भाषा में अपनी छोटी बालिका को बाइबल के पद और कोरस सिखाए, और उस बालिका ने अपने साथियों को वे पद और कोरस सिखाए। वे बालक अपने घरों को गए और उन्होंने वे पद अपने माता-पिता को सिखाए। शीघ्र ही एक व्यक्ति का मन परिवर्तन हुआ और वह मसीह के समीप आया।

इस मिश्नरी जोड़े ने वहाँ और चौदह वर्षों तक (कुल मिलाकर 21 वर्षों तक) बिना अपने देश को लौटे निरन्तर उद्योग किया और उस अवधि में सात और व्यक्ति मसीह के लिए जीते गए। परमेश्वर किसी की सफलता का मूल्यांकन संख्याओं द्वारा नहीं करता जैसे मनुष्य करते हैं। इस जोड़े ने वहाँ 21 वर्ष व्यतीत करने के उपरान्त केवल आठ ही व्यक्तियों को अनन्त जीवन के लिए जीता। निश्चयतः उन्हें मसीह के पुनः आगमन पर बड़ा प्रतिफल मिलेगा। 21 वर्षों की समाप्ति पर, पिता ने एक दिन अपनी 14 वर्षीय बालिका के हाथ पर एक धब्बा देखा। डॉक्टर के पास

ले जाने पर उसने बताया कि उसे कोढ़ की बीमारी हो गई है। परमेश्वर के प्रति उनकी भक्ति और बुलाहट के कारण उनकी बच्ची को जो कुछ सहना पड़ा इससे उनका मन टूट गया। माता और बच्ची उपचार के लिए वापिस अमेरिका लौटे। किन्तु बच्ची के पिता चीन में ही ठहरे रहे। जब प्रश्न किया गया कि अपने परिवार के संग वे अमेरिका क्यों नहीं लौटे तो उनका उत्तर था, "अपने घराने के साथ स्वदेश वापिस लौटना मुझे अच्छा लगता, किन्तु यहाँ मेरे मिशन क्षेत्र में आठ ऐसी आत्माएँ हैं जिन्हें शिक्षा तथा आत्मिक भोजन की आवश्यकता है। यदि मेरे स्थान में कोई अन्य व्यक्ति भेजा जाए, तो उसे यहाँ के लोगों का विश्वास प्राप्त करते कई वर्ष लग जाएंगे। अतः मुझे लगता है कि यहीं रहना उचित है।" परमेश्वर की सेवा के लिए उस घराने को भारी मूल्य चुकाना पड़ा।

अनेक विश्वासी जिनके पास बहुत अधिक है, परमेश्वर को बहुत थोड़ा देते हैं। लेकिन बहुत थोड़े ऐसे हैं जिनके पास बहुत कम होते हुए भी वे बहुत अधिक देते हैं। और इन्हीं थोड़े विश्वास-योग्य लोगों के द्वारा परमेश्वर अपनी कलीसिया बनाता है। किसी कौतुहल-जन्य बाह्य प्रदर्शन के द्वारा परमेश्वर का राज्य नहीं आता, किन्तु इस मिश्नरी सदृश्य परमेश्वर के भक्तों के द्वारा आता है। इस पृथ्वी में सम्भवतः इन में से कई स्त्री-पुरुषों का हम नाम ही न सुनें। तौभी वे अनन्त-युग में सितारों के सदृश्य चमकेंगे।

दमिश्क ने मार्ग पर बचाए जाने के उपरान्त पौलुस प्रेरित भी सहज जीवन का चुनाव कर सकता था। अन्ताकिया या तरसुस में एक मसीही उद्योगपति होकर वह अति शान्तिपूर्ण जीवन जी सकता था। परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। वह परमेश्वर की सेवकाई के लिए निकला और उसने कठिनाइयों को सहा उसे पीठ पर 195 कोड़े पड़े, उसे पत्थरवाह किया गया। उसने समुद्रों की जोखिम सही तथा परमेश्वर की सेवा करते हुए अनेक खतरों का सामना किया। यदि हम उससे पूछ सकते कि उसने इतना सब क्यों सहा, तो वह कहता, "जब मैंने अपना जीवन मसीह को दिया, तो निश्चय किया कि मैं मसीह को अपनी ऐसी सेवकाई कभी न दूंगा जिसके लिए मुझे कोई मूल्य चुकाना न पड़े।"

दो सौ वर्षों पूर्व मोरेबिया के भाइयों ने एक विशाल मिश्नरी गतिविधि का आरम्भ किया जो संसार में अद्वितीय रही। उनमें से दो ने पश्चिमी द्वीप समूह में किसी गुलाम बस्ती के विषय में सुना और जीवन पर्यन्त दास होने के लिए स्वेच्छा से स्वतः को बेच दिया, ताकि उस द्वीप में जाकर वहाँ के गुलामों को सुसमाचार प्रचार कर सकें।

दो अन्य ने अफ्रीका में किसी कोढ़ी बस्ती के विषय में सुना जहाँ इस भय से कि रोग न फैले किसी को वहाँ आने-जाने की अनुमति नहीं थी। उन्होंने आजीवन इस कोढ़ी बस्ती में व्यतीत करने के लिए स्वयं को दे दिया, ताकि उस बस्ती के निवासियों पर मसीह को प्रगट कर सकें। मोरेविया के इन भाइयों को ज्ञात था कि किसी भी मूल्य पर अपने आप को दे देने के द्वारा, परमेश्वर की आराधना करना क्या है।

इन व्यक्तियों की तुलना में हमारा जीवन और परिश्रम कितना उथला और दिखावटी है। परमेश्वर की सेवा करने के लिए हमें कितना मूल्य चुकाना पड़ा है—धन, आराम, नाम, प्रतिष्ठा स्वास्थय के संबन्ध में? यदि हमारी मसीहियत के लिए इस संसार की दृष्टि में प्रिय लगनेवाली वस्तुओं का परित्याग हमने नहीं किया है तो हम वस्तुतः जानते ही नहीं कि परमेश्वर की आराधना करना क्या है—क्या हम यह जानते हैं? जो समग्र मन से, सकल त्यागकर, परमेश्वर की सेवा करते हैं, सिर्फ वे ही हैं जिन्हें अनन्तकाल में कोई पछतावा न होगा। आज परमेश्वर उन लोगों को बुला रहा है जो सर्वस्व से खाली होकर—क्रूस के मार्ग में उसके पीछे हो लेंगे।

सामर्थ का यही पथ है। हमें इसके स्मरण कराए जाने की और भी अधिक आवश्यकता है इस युग में जबकि अनेक लोगों के विचारानुसार आत्मिक सामर्थ प्राप्त करने के अनेक छोटे रास्ते और ऐसे अनुभव हैं जो एक ही बार में सदा के लिए प्राप्त हो जाते हैं। सामर्थ का एकमात्र मार्ग क्रूस का मार्ग है। यीशु दृढ़ता-पूर्वक क्रूस के मार्ग में उन्मुख हुआ। हमारी क्या स्थिति है? हमारे समक्ष प्रतिदिन यह चुनाव रहेगा। यदि हमें जयवन्त जीवन के लिए तीन सरल कदमों की अपेक्षा कर रहे हैं तो बाइबल में हमारे लिए कोई सन्देश नहीं है। किन्तु यदि हम स्वतः का त्याग कर,

प्रतिदिन क्रूस उठाकर मसीह के पीछे जाने का मूल्य चुकाने को तैयार हैं, तो अपने जीवन एवं सेवकाई के लिए परमेश्वर के आत्मा की सामर्थ को हम स्वयं पर ठहरते वस्तुतः जान लेंगे।

4

मसीह सदृश्य जीवन की सुन्दरता

मसीह हमें ''राख के बदले सौदर्य'' प्रदान करने आया। हमारे स्व–जीवन की राख के स्थान पर हमें अपने ईश्वरीय–जीवन की सुन्दरता देने आया। हमने इस आत्मा–केद्रित जीवन की कुछ विशेषताओं पर ध्यान दिया है। और हमने इस पर भी ध्यान दिया है कि क्रूस का मार्ग–टूट जाना और खाली हो जाना ही–एकमात्र पथ है जो हमारे स्व–जीवन के तिमिर से निकल कर हमें मसीह सदृश्य जीवन के भरपूर प्रकाश में पहुँचा सकता है।

किसी दिन, जब मसीह लौटेगा और समस्त प्रतिरूपों का लोप हो जाएगा, तब इस पथ पर जितनों ने कदम रखे उन सब पर चिर कान्ति का अभ्युदय होगा। किन्तु अभी भी इस धरती पर हमारे जीवनों से वह आभा प्रतिबिम्बित हो सकती है। इसी हेतु परमेश्वर नें हमें अपना पवित्र आत्मा दिया है। वह हमारे जीवनों को भरपूर करना चाहता है। पवित्र आत्मा की भरपूरी के द्वारा ही हममें मसीह सदृश्य जीवन का सौन्दर्य झलकता है।

आत्मा से भरपूर व्यक्ति की विशेषताओं पर मनन करने से पूर्व, पवित्र आत्मा तथा उसकी सेवकाई के विषय में कुछ गलत धारणाएं हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है।

पवित्र आत्मा की प्रधानताः

सर्वप्रथम, हमें स्मरण रखना चाहिए कि पवित्र आत्मा सार्वभौम है तथा विभिन्न रीतियों से कार्य-करता है। यीशु ने कहा, "हवा जिधर चाहती है उधर चलती है, और तू उसका शब्द सुनता है, परन्तु नहीं जानता, कि वह कहाँ से आती और किधर को जाती है? जो कोई आत्मा से जन्मा है वह ऐसा ही है" (यूहन्ना 3:8)।

आप वायु को–उसकी गति तथा दिशा को नियंत्रित नहीं कर सकते। पवित्र आत्मा के सम्बन्ध में भी ऐसा ही होता है। तौभी अनेक विश्वासी कल्पना करते हैं कि वे पवित्र आत्मा को वश में करके अपने नियमों और रीतियों के अनुसार उससे कार्य करवा सकते हैं। जब त्रिएकत्व का दूसरा व्यक्ति इस जगती पर था, तब फरीसियों ने उसे अपनी तुच्छ विधियों और प्रथाओं से बाँधना चाहा। किन्तु उसने इन बंधनों को अस्वीकार किया। इवेंजेलिकल मसीहियत में फरीसियों की सन्तान आज त्रिएकत्व के तीसरे व्यक्ति को बाँधने में एड़ी चोटी का जोर लगा रही है। किन्तु वह मनुष्यों की बनाई गई रीतियों के अनुसार कार्य करने से इन्कार करता है। वह जहाँ चाहता है वहाँ बहता है। हम उसके कार्य करने की आवाज सुन सकते हैं, किन्तु वह हमारे द्वारा न तो नियंत्रित होगा न ही हम उसको निर्देश दे सकेंगे।

हम नहीं कह सकते कि जैसा काम उसने हममें किया है उसी प्रकार उसे दूसरों के जीवन में भी करना चाहिए; न ही हमें उससे आज उसी प्रकार से काम करने की आशा रखनी चाहिए जिस प्रकार से उसने अतीत में कार्य किया। वह सर्वप्रधान है। हमारे लिए उचित यही है कि हम वायु की दिशा में मुख कर लें और वायु को ही स्वयं को ले जाने दें। किसी भी मिशन के सिद्धान्तों से पवित्र आत्मा को बांधा नहीं जा सकता। हमें बोध होगा कि जिस प्रकार से वह कार्य करता है उसके द्वारा वह हमें विस्मय में डाल देगा। पेन्टिकॉस्टल और गैर-पेन्टिकॉस्टल दोनों को यह जानने की आवश्यकता है।

समय-समय पर पवित्र आत्मा स्वयं को बवंडर के सदृश्य प्रगट कर सकता है। हो सकता है अनेक लोगों के मनोवेग उत्तेजित हों तथा शारीरिक लक्षण भी प्रगट हों। हमें इन्हें स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। परमेश्वर ने बवंडर में से होकर अय्यूब से बातें की (अय्यूब 38:1)।

किन्तु हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि समय-समय पर पवित्र आत्मा का झोंका मन्द पवन सा हो सकता है। जब एलिय्याह ने आँधी का स्वर सुना, तो लिखा है कि परमेश्वर उस आँधी में न था (1 राजा 19:11)। नहीं। प्रत्येक उत्तेजित मनोवेग भी परमेश्वर की ओर से नहीं होता। अतः हमें सावधान रहना चाहिए।

पवित्र आत्मा सदैव चक्रवात जैसे नहीं आता। कभी कदा वह आता है लेकिन सदा नहीं। हमें उससे यह प्रत्याशा नहीं करनी चाहिए कि वह सबके जीवन में अनवरत रूप से आँधी की नाई चले, सिर्फ इसलिए कि किसी समय किसी के जीवन में उसने इसी रीति से प्रवेश किया। साथ ही हमें उससे यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि वह सदैव मन्द पवन जैसे बहे। यह अवश्य है कि वर्तमान युग में हमारी अनेक कलीसियाओं पर से उसे चक्रवात सदृश्य बहने की आवश्यकता है, ताकि उनमें विद्यमान मसीह का अपमान करने वाली बातें उखाड़ फेंकी जाएं।

वाह्य दिखावे को कभी भी वरदान समझने की गलती नहीं करनी चाहिए। पवित्र आत्मा स्वतः जी उठे हुए प्रभु का उसकी कलीसिया के लिए दान है। जब वह लोगों पर उतरता है तो हल्लिलूय्याह की चिल्लाहट मच सकती है, आनन्द के अश्रु बह सकते हैं और लोगों को भिन्न-भिन्न भाषा बोलने का वरदान मिल सकता है, अथवा वह अत्यन्त शान्तिमय रीति से बिना अधिक उत्तेजना के भी उतर सकता है।

प्रत्येक का स्वभाव विभिन्न होता है, और परमेश्वर का आत्मा (अनेक मसीहियों के विपरित), हरएक की प्रकृति के अनुकूल स्वयं को बना लेने को तैयार होता है। अतएव दूसरों से यह अपेक्षा करना कि उन्हें भी हमारे जैसे चिन्हों के साथ पवित्र आत्मा मिले, मूर्खता है, फिर चाहे उसका

उतरना कौतुकपूर्ण हो अथवा अत्यन्त सामान्य। केवल बालक ही अपने ईनाम के ऊपरी सुन्दर काग़ज पर दृष्टि कर उसी काग़ज ही से प्रसन्न रह जाते हैं। किन्तु व्यस्क जानते है कि ऊपरी काग़ज से अधिक महत्व की वस्तु स्वयं वह भेंट है। प्रेरित पौलुस का जीवन परिवर्तन मसीह के दर्शन के द्वारा हुआ था। किन्तु उसने यह प्रचार नहीं किया कि उद्धार पाने से पहले सबको वैसे ही दर्शन की आवश्यकता है। नहीं। उसने पहचान लिया कि आन्तरिक वास्तविकता की ही महत्ता है चाहे उसके साथ ऊपरी लक्षण कुछ भी क्यों न हों। ऐसा ही पवित्र आत्मा की भरपूरी के संबन्ध में भी सत्य है।

पवित्र आत्मा और परमेश्वर का वचन:

द्वितीय, हमें स्मरण है कि पवित्र आत्मा सदैव परमेश्वर के वचन के अनुरूप कार्य करता है—क्योंकि उसने स्वतः उस वचन को लिखा है, और वह यह नहीं बदलता। इस सत्य को हम धर्मशास्त्र के पहले ही परिच्छेद में पाते हैं। जब धरती पर अंधकार आच्छादित था, तब परमेश्वर का आत्मा उस पर मंडराता था, तब परमेश्वर ने कहा—"उजियाला हो।" जहाँ पहले अंधकार था वहाँ परमेश्वर के सृजनात्मक वचन और पवित्र आत्मा के कार्य द्वारा उजियाला हो गया। जहाँ पृथ्वी पहले बेडौल और सूनी पड़ी थी वहाँ रूप और भरपूरी आई (उत्पत्ति 1:1-3)।

नया जन्म हममें परमेश्वर के वचन के रोपे जाने के द्वारा (1 पतरस 1:23), साथ ही पवित्र आत्मा के कार्य द्वारा (तीतुस 3:5) होता है। हमें पवित्र बनाने का कार्य भी इसी प्रकार हमारे जीवनों में परमेश्वर के वचन तथा पवित्र आत्मा के कार्य के परिणाम-स्वरूप होता है (यूहन्ना 17:17; 2 थिस्स॰ 2:13)। इसी प्रकार, पवित्र आत्मा की भरपूरी और परमेश्वर के वचन से परिपूर्ण होना भी साथ-साथ होते हैं। इफिसियों 5:18-6,9 को कुलुस्सियों 3:15-21 के साथ तुलना करने से यह स्पष्ट विदित होता है। इफिसियों के अध्याय में हमें बताया गया है कि धन्यवाद देना—परमेश्वर की प्रशंसा करना और मसीह सदृश्य घरेलू सम्बन्ध

से एक दूसरे के आधीन रहना, आत्मा से परिपूर्ण हो जाने का परिणाम है। जबकि कुलुस्सियों के अध्याय में ये ही बातें परमेश्वर के वचन से परिपूर्ण हो जाने का परिणाम कही गई हैं।

यदि हम सन्तुलित मसीही होना चाहते हैं तो हमें इस सत्य को पहचानने की आवश्यकता है। भाप से चलित ईजिंन को आगे बढ़ने के लिए न सिर्फ भाप चाहिए होता है, परन्तु रेल की पाँतें भी। यदि हमें आत्मिक उन्नति करना है तो परमेश्वर की आत्मा की भाप चाहिए, परन्तु हमें परमेश्वर की वचन रूपी पाँतों की भी आवश्यकता है ताकि हम मार्ग से भटक न जाएं। दोनों का बराबर महत्व है। कुछ लोगों ने भाप से पूर्ण होने का दावा करने के उपरान्त भी पाँतों की उपेक्षा की है, फलतः दलदल में जा फसे हैं।

अनुभव को अधिक महत्व देकर उन्होंने ध्यान नहीं रखा है कि परमेश्वर के वचन द्वारा सब कुछ को परखें, फलस्वरूप वे पटरियों से अलग निकल गए हैं। पटरियों से अलग धसी सीटी पर सीटी देती हुई ईजिंन के सदृश्य, अनेक लोग अपनी सभाओं में घर सिर पर उठाते हैं, तौभी उनके जीवनों में कोई आत्मिक उन्नति नहीं दिखाई देती–न ही मसीह की समानता में वे बढ़ते जाते हैं।

कुछ लोग इसके सर्वथा विपरीत स्थिति को अपनाते हैं। हाँ, वे पटरियों पर तो अवश्य रहते हैं, किन्तु ईजिंन में भाप भरने की आवश्यकता की उपेक्षा करते हैं (अथवा न होने पर भी परिपूर्ण होने की कल्पना करते), और वे भी फंस जाते हैं। वे परमेश्वर के वचन के महत्व पर बल देते हैं तथा उसके प्रत्येक बिन्दु के सम्बन्ध में भी सावधान रहते हैं–वे पटरियों को सराहना-पूर्वक निहारते और चमकाते रहते हैं। किन्तु वे यह नहीं समझते कि उन्हें पवित्र आत्मा से परिपूर्ण होने की आवश्यकता है। अपने सिद्धान्तों में वे मौलिक हैं, ठीक है–पाँतें बिल्कुल सीधी हैं–किन्तु ईजिंन को आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त भाप नहीं है। वे अपने सिद्धान्तों में ठीक हैं तौभी मृतक हैं।

हम दोनों उत्कट स्थितियों से बचे रहें।

हमारा सीमित ज्ञानः

तीसरा, हमें विदित होना चाहिए कि हममें से अच्छे से अच्छे लोग भी पवित्र आत्मा और उसके कार्यों के विषय में सब कुछ नहीं जानते। कई मसीही ऐसा प्रभाव डालते हैं कि पवित्र आत्मा के संबन्ध में उन्हें सब उत्तर ज्ञात है। इस विषय पर बाइबल की शिक्षा का उन्होंने विश्लेषण किया है और प्रत्येक पद को व्यवस्थित रूप से उन्होंने विषयानुसार विभाजित कर अलग-अलग खंडों में रखा है। मैं ऐसे लोगों से बहुत सावधान रहता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि वे गलती पर हैं। हम सब कुछ नहीं जानते। हम केवल कुछ ही अंश जानते हैं—विशेषकर आत्मा के कार्य के विषय में। हमें जानना चाहिए कि परमेश्वर पवित्र आत्मा की महत्ता तथा विशालता के विषय में हमारी नाशमान पापमय बुद्धि पूर्णतः नहीं समझ सकती।

डा॰ ए॰ डब्ल्यू॰ टोज़र ने कहा है कि बाइबल का अत्यन्त गम्भीर कथन यहेजकेल 37:3 का है, जहाँ यहेजकेल ने कहा है, "हे परमेश्वर यहोवा, तू ही जानता है।" मेरे विचार से डा॰ टोजर की उक्ति में बहुत कुछ सच है। हम किसी सीमा तक जानते हैं। किन्तु हम सब उस स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ कहना पड़ता है, "हे परमेश्वर यहोवा, मैं इतना ही जानता हूँ परन्तु इसके परे भी बहुत अधिक है जिसे मैं नहीं जानता। मैं तो अभी सत्य की छोर तक ही पहुँचा हूँ।" जैसा अय्यूब ने कहा, "देखो, ये तो उसकी गति के किनारे ही है। जैसा अय्यूब ने कहा, देखो ये तो उसकी गीत के किनारे ही है, और उसकी आहट फुसफुसाहट ही सी तो सुन पड़ती हैं, फिर उसके पराक्रम के गरजने का भेद कौन समझ सकता है?" (अय्यूब 26:14)।

इस प्रकार के दृष्टिकोण से हम पवित्र आत्मा के सम्बन्ध में गलत सिद्धान्त गढ़ने से बचे रहेंगे जिसके विषय में हमें बाइबल में स्पष्ट शिक्षा नहीं दी गई है। हम उनके प्रति भी अनेक सहिष्णु बनेंगे जो पवित्र आत्मा के कार्य के सम्बन्ध में हम सा विचार नहीं रखते। हो सकता है वे गलत हों, परन्तु हम भी तो गलत हों सकते हैं। जिनका स्पष्ट प्रगटीकरण धर्मशास्त्र में है वह हमारी शिक्षा के लिए है, किन्तु उससे परे हमें कल्पना से कुछ नहीं गढ़ना है (व्य॰ वि॰ 29:29)।

कोई सरल विधि नहीं:

चौथा, हम स्मरण रखें कि आत्मा से परिपूर्ण जीवन की कोई सरल विधि नहीं है—न ही कोई सहज सूत्र है जो इसमें सफल होने का निश्चय दिला सकता है। आधुनिक युग में मानवीय श्रम का स्थान ऐसे बटनों ने ले लिया है जिन्हें दबाते ही काम आरम्भ हो जाता है तथा मानव ने भी सामान्यतः सहज, शान्तिप्रिय जीवन का तत्वज्ञान अपनाया है, अतः यही दृष्टिकोण मसीही भी अनजाने ही आत्मिक विषयों में भी ले आते है। परिणामस्वरूप हम सोच सकते हैं कि पवित्र आत्मा से भरपूर होने का कोई सरल सूत्र होगा: पहला, दूसरा, तीसरा कदम लिए—और हम पवित्र आत्मा से परिपूर्ण हो गए! किन्तु हमें ऐसा कोई भी सूत्र बाइबल में नहीं मिलता। किसी व्यक्ति के जीवन में पवित्र आत्मा के कार्य को सूत्रों में बदल कर हम उसके महत्व को कम करने से सावधान रहें। आत्मा की भरपूरी कोई याँत्रिक वस्तु नहीं है परन्तु जीवन का विषय है—और आत्मिक जीवन को सूत्रों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

परिपूर्ण होने का डींग न हांकना:

पाँचवां, ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि पूरे नये नियम में एक भी उदाहरण कहीं नहीं है जहाँ किसी ने यह साक्षी दी हो कि वह आत्मा से भरपूर हो गया। यह स्तब्ध कर देने योग्य तथ्य है, तौभी सत्य और बड़े महत्व का है। प्रेरितों के काम में, लूका ने वर्णन किया है कि विभिन्न लोग पवित्र आत्मा से परिपूर्ण हो गए, परन्तु इसके विषय में उनमें से किसी ने स्वतः साक्षी नहीं दी। पौलुस प्रेरित पर ध्यान दीजिए उसके मसीह जीवन के आरम्भ में (प्रेरितों 9 के अनुसार) चार घटनाएं हुईं। उसका जीवन परिवर्तन हुआ (पद 6); वह चंगा हुआ (पद 18); उसने जल में बपतिस्मा लिया (पद 18) और वह पवित्र आत्मा से परिपूर्ण हो गया (पद 17)। किन्तु जब पौलुस ने अपनी साक्षी (प्रेरितों 22 और 26 दोनों में) दी तो उसने सिर्फ उक्त तीन बातों को ही बताया। उसने विस्तार-पूर्वक अपने जीवन बदलाव की गवाही दी। उसने यह भी बताया की परमेश्वर ने किस प्रकार उसकी अंधी आँखों को चंगा किया और हनन्याह ने कैसे

उसे बपतिस्मा दिया। किन्तु इस तथ्य का उल्लेख उसने नहीं किया कि वह पवित्र आत्मा से भरपूर हो गया। अपनी पत्रियों तक उसने अपने पवित्र आत्मा से भरपूर होने के अनुभव का उल्लेख कभी नहीं किया, यद्यपि उसने अपने कई दूसरे अनुभवों का वर्णन किया है।

पौलुस आत्मा से भरपूर होने के अपने अनुभव के विषय में मौन क्यों था? उसका एक कारण था। जो चार बातें उसके जीवन में हुईं, उनमें से सिर्फ तीन ही ऐसी घटनाएं थी जो "सदा के लिए एक ही बात में" पूर्ण हो गईं। चौथे को सतत अनुभव होना था। पौलुस का नयाजन्म, उसके नेत्रों की चंगाई और उसका जल का बपतिस्मा ऐसे अनुभव थे जिनकी पुनरावृत्ति कभी नहीं होनी थी। परन्तु आत्मा की भरपूरी ऐसा अनुभव था जिसे प्रतिदिन प्रतिक्षण नया होने की आवश्यकता थी (इफिसियों 5:18 पर ध्यान दीजिए, जहाँ पौलुस ने स्वतः हमें "आत्मा से परिपूर्ण होते जाओ" कहा है–जो सही अनुवाद है)। इसीलिए पौलुस ने इसके विषय कभी साक्षी नहीं दी।

पौलुस का व्यवहार उन व्यक्तियों से कितना भिन्न था जो आज व्यर्थ ही गाल बजाते हैं! पौलुस ने अपने जीवन तथा अपने परिश्रम से यह सिद्ध किया कि वह आत्मा से भरपूर था। उसके लिए दूसरों को यह साक्षी देने की कोई आवश्यकता नहीं थी कि वह आत्मा से परिपूर्ण था। आज, दूसरी ओर हम उन लोगों को पाते हैं जो केवल अतीत के अपने अनुभव की साक्षी ही दे सकते हैं किन्तु जिनके जीवन और कार्य पौलुस के सर्वथा प्रतिकूल हैं।

यदि हम पवित्र आत्मा से परिपूर्ण हैं, तो बिना हमारे दूसरों को बताए लोग जान लेंगे। मूसा का मुख तेजोमय था कि किन्तु वह स्वयं इससे अनभिज्ञ था। केवल दूसरों ने उसे देखा (निर्ग० 34:29-30)। ऐसा ही उस व्यक्ति के साथ भी होगा जो यथार्थतः आत्मा से परिपूर्ण है। मेरा संकेत यहाँ पवित्र आत्मा को पाने की साक्षी से नहीं है किन्तु उसके द्वारा परिपूर्ण हो जाने से है। जितनों ने वस्तुतः नया जन्म पाया है उन्होंने पवित्र आत्मा

भी पाया है (रोमि॰ 8:9) और उन्हें इसके सम्बन्ध में साक्षी देने के योग्य होना चाहिए (प्रेरितों 19:2 और गल॰ 3:3)। किन्तु धर्मशास्त्र संगत कोई भी ऐसा आदेश हमारे लिए नहीं है कि हम आत्मा से परिपूर्ण होने की साक्षी दें।

पौलुस का उदाहरण:

आत्मा से परिपूर्ण जीवन का, गलतियों 2:20 में पौलुस के कथन से बढ़कर स्पष्ट वर्णन अन्यत्र नहीं है, "मैं मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया हूँ, और अब मैं जीवित न रहा, पर मसीह मुझ में जीवित हैं।" क्योंकि आत्मा से भरपूरी का उद्देश्य ही क्या है यदि वह हममें मसीह का जीवन उत्पन्न न करें? अतएव जिस परिणाम में हमारा आत्म-केन्द्रित जीवन क्रूस पर चढ़ा होता है और हममें मसीह सा जीवन परिलक्षित होता है वही पवित्र आत्मा से परिपूर्ण होने के हमारे अनुभव की सच्ची माप है।

पौलुस ने गलतिया के मसीहियों से कहा, "हे भाइयो, मैं तुम से बिनती करता हूँ, तुम मेरे समान हो जाओ" (गल॰ 4:12)। वह उनमें से था जो दूसरों से अपने उदाहरण पर चलने को कह सकते थे। उसे वह नहीं कहना पड़ा, "मेरी ओर मत देखो, परन्तु मसीह की ओर देखो।" उसने निरन्तर दूसरों को प्रेरित किया कि वे उसके जीवन के उदाहरण पर दृष्टि करें और उसके जीवन का अनुकरण करें जैसे उसने मसीह का अनुकरण किया था (1 कुरि॰ 4:16; फिलि॰ 3:17)। उसका मसीही अनुभव इतना संतोषप्रद था कि जंजीरों से जकड़े हुए भी वह राजा अग्रिप्पा से कह सका, "हे राजा संसार में जितना तेरे पास है उन सबके होते हुए भी मेरी यही कामना है कि जैसा मैं (आत्मिक रूप से) हूँ वैसे ही तू भी हो जाए" (प्रेरितों 26:29)। वह डींग नहीं हाँक रहा था, क्योंकि अन्यत्र उसने कहा, "परन्तु मैं जो कुछ भी हू", परमेश्वर के अनुग्रह से हूँ" (1 कुरि॰ 15:10)।

अत: अब हम पौलुस की जीवनी और सेवकाई पर ध्यान दें ताकि मसीह-सदृश्य जीवन की कुछ विशेषताओं पर दृष्टि कर सकें। धर्मशास्त्र से हम आठ अध्यायों पर मनन करेंगे जहाँ पौलुस ने इसी वाक्यांश "मैं हूँ" का प्रयोग करते हुए अपने जीवन और सेवा का वर्णन किया है।

सर्वप्रथम हम आत्मा से परिपूर्ण सेवकाई की विशेषताओं पर तदुपरान्त आत्मा से परिपूर्ण जीवन की विशेषताओं पर ध्यान देंगे।

आत्मा से परिपूर्ण सेवकाई

पौलुस प्रेरित के वचनों में से, मैं चार बातें आत्मा से भरपूर सेवकाई के सम्बन्ध में कहना चाहूँगा।

प्रेम का दासः

सर्वप्रथम, आत्मा से भरपूर सेवकाई प्रेम से भरे हुए दास की सेवकाई है। प्रेरितों॰ 27:23 में पौलुस ने कहा, "परमेश्वर जिस का मैं हूँ, और जिस की सेवा करता हूँ।" वह अपने परमेश्वर का प्रेमी सेवक था। उसने अपने जीवन पर कोई अधिकार नहीं रखा। उसने अपना सब कुछ अपने स्वामी को दे दिया।

हमारे समर्पण का एकमात्र समुचित आधार इस तथ्य की पहचान है कि हम सर्वप्रथम पूर्णरूपेण परमेश्वर के हैं। परमेश्वर ने हमारे लिए जो कुछ किया है उसका आभार मानते हुए हम स्वयं को परमेश्वर को दें, ऐसा यद्यपि उचित है, तथापि मसीही समर्पण का सच्चा आधार नहीं। प्रभु के लिए हमारी सेवकाई में मसीह के प्रति प्रेम से प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। परन्तु परमेश्वर को अपना जीवन सौंप देने का आधार यही तथ्य होना चाहिए कि उसने क्रूस पर हमें खरीदा है। अतएव अब हम परमेश्वर की निज सम्पत्ति हैं, और हमें स्वतः का कोई अधिकार नहीं है।

इसलिए जब कोई व्यक्ति अपना सकल जीवन परमेश्वर को सौंप देता है तो वह परमेश्वर का कोई बड़ा उपकार नहीं करना है। उसने जो कुछ परमेश्वर से चुरा लिया था उसे केवल वह वापिस ही करता है। यदि मैं किसी व्यक्ति के पैसों की चोरी करूँ और कुछ समय पश्चात् अपने पाप का कायल होकर उसे वापिस कर दूँ तो निश्चय ही मैं उस व्यक्ति पर कोई उपकार नहीं करूँगा। इसी उचित दृष्टिकोण से हमें परमेश्वर को अपना जीवन समर्पित करते समय उसके निकट जाना चाहिए। परमेश्वर ने हमें खरीदा है। इसे पहचान लेने पर ही हम अपने समर्पण के उचित आधार पर पहुँचते हैं।

पौलुस प्रभु का प्रेम से पूर्ण दास था। इब्रानी दास के सदृश्य, जो अपने कार्यकाल के सातवें वर्ष में मुक्त हो सकता था किन्तु अपने स्वामी के प्रेम के कारण पुनः सेवकाई करने का चुनाव करता था (निर्ग॰ 21:1-6), पौलुस ने अपनी प्रभु की सेवा की। वह वेतन पर लगा हुआ सेवक नहीं था जो मज़दूरी पाने के लिए काम करे, किन्तु ऐसा दास था जिसने स्वकीय अधिकारों के सेवकाई की।

प्रेम के दास होने का यही अर्थ है। परमेश्वर उनकी खोज में है जो उसके प्रति इतने समर्पित है तथा सदा इस ताक में रहते हैं कि वह उनसे जो काम लेना चाहे उन्हें दर्शाए यह नहीं कि वे परमेश्वर के लिए अपनी मनमानी सेवकाई करने में व्यस्त रहें। दास वह नहीं करता जो स्वयं चाहता है। नहीं। वह पूछता है, "मालिक, आप क्या चाहते हैं मैं करूँ?" और उससे जो कहा जाता है वही वह करता है। बाइबल में लिखा है, "यहाँ भण्डारी में यह बात देखी जाती है, कि विश्वासयोग्य निकले" (1 कुरि॰ 4:2)।

प्रभु कहता है,

ढूंढ रहा हूँ मैं उसे मेरे कहे जो काम करे,
मेरी आँखों की ओर ताके जो जो कहूँ वह सब करे;
बात न कभी एक टाले हर इच्छा मेरी पूर्ण करे,
आनन्द उसी से हो मुझे जो ऐसा कोई मिल जाये।

परमेश्वर ने एक बार कहा, "मैंने उनमें ऐसा मनुष्य ढूंढ़ना चाहा.... परन्तु ऐसा कोई न मिला" (यहे॰ 22:30)। वह आज ऐसे व्यक्तियों को ढूंढ़ रहा है जो प्रेम से उसके दास बन जाएं। किन्तु वह इने गिनों को ही पाता है।

सुसमाचार के लिए प्रेम
मनोवेग की उत्तेजना नहीं

दूसरा, आत्मा से भरपूर सेवकाई ऐसी सेवकाई है जिसमें आत्मा से भरपूर व्यक्ति यह जान लेता है कि वह दूसरों का ऋृणी है। पौलुस ने कहा, "मैं युनानियों (बुद्धिमानों) और अन्यभाषियों (निर्बुद्धियों) का

कर्ज़दार हूँ" (रोमि॰ 1:14) : परमेश्वर ने संसार के साथ बाँटने के लिए हमें सम्पत्ति दी है। हम डाकिए के सदृश्य हैं जो अपने थैलों में मनी–आर्डर और पैसों को थामे कई लोगों तक चक्कर काटते रहते हैं। ऐसा डाकिया उन लोगों का तब तक कर्ज़दार रहता है जब तक प्रत्येक को उसका हिस्सा नहीं बांट देता। उसके पास थैले में हज़ारों रूपये हो सकते हैं किन्तु एक भी पैसा उसका स्वयं का नहीं होता। वह ऋृणी होता है।

पौलुस प्रेरित ने स्वतः को इसी प्रकार ऋृणी जाना जब परमेश्वर ने उसे सुसमाचार सौंप दिया। उसे ज्ञात था कि शुभ संदेश दूसरों तक पहुँचाना ही है। तथा वह इस बात से भी अवगत था कि वह दूसरों का ऋृणी तब तक रहेगा जब तक उद्धार का संदेश उनको नहीं देगा। शुभ संदेश का प्रचार पच्चीस वर्षों तक कर लेने के उपरान्त भी पौलुस ने कहा, "मैं... कर्ज़दार हूँ।" उसने रोम के मसीहियों को लिखा कि वह रोम के लोगों का अपना ऋृण चुकाने आने के लिए अब तैयार है। रोमियों 1:14–16 पर ध्यान दीजिए जहाँ दो बार उसने "मैं हूँ" का प्रयोग किया : "मैं... कर्ज़दार हूँ," "मैं तैयार हूँ।" आगे उसने लिखा कि वह सुसमाचार से नहीं लजाता।

आत्मा से भरपूर सेवकाई दूसरों तक पहुँचने वाली सेवकाई है। मसीही दूसरों के प्रति अपना कर्ज़ स्वीकार करता है तथा जाकर अपना कर्ज़ चुकाने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है। आत्मा की भरपूरी और मसीह सदृश्य जीवन के सौन्दर्य का प्रमाण उत्तेजित मनोवेगों का अनुभव करना नहीं परन्तु हृदय का अनुराग है।

हाँ, आत्मा से भरपूर व्यक्ति की सेवकाई में सुसमाचार प्रचार के प्रति तीव्र उत्कंठा होती है तथा वह निरन्तर दूसरों तक इसे पहुँचाना चाहता है। वह अपने ही संतोष पर ध्यान नहीं देता अपितु दूसरों की आवश्यकताओं की भी चिन्ता करता है। मसीह ने स्वतः कभी अपने को संतुष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया (रोमि॰ 15:3)।

हमारे युग में भी इस पर जोर दिया जाना चाहिए कि आत्मा की परिपूर्णता तथा उसके वरदान केवल हमारे मनोवेगों को सन्तुष्ट करने के

लिए ही नहीं दिए गए हैं। दूसरों के समक्ष प्रदर्शन करने के लिए तो और भी नहीं दिए गए हैं। डॉ॰ टोज़र ने कहा है, "प्रदर्शन किंडरगार्टन में सामान्य है।" परमेश्वर की कामना है हम आत्मिक रूप से परिपक्व बनें और ऐसा बनने पर न ही हममें सांवेगिक उत्तेजना के प्रति अनुराग रह जाएगा और न प्रदर्शन करने का किन्तु सुसमाचार प्रचार हमारे गले का हार होगा।

डॉ॰ ई॰ एल॰ कटेल ने अपनी सर्वोत्तम पुस्तक, "द स्पिरिट ऑफ होलीनेम" में लिखा है कि साँवेगिक उत्तेजना के पाँच खतरे हैं जिनके प्रति हमें चैतन्य रहना चाहिए। मैंने स्वतः इन्हें अत्यन्त लाभप्रद पाया है और इन्हें नीचे लिखता हूँ।

1. सावेंगिक यथार्थता को खो देने का भय—जब तक शोर गुल, रोना गाना किसी सभा में न हो तब तक परमेश्वर उपस्थिति नहीं है—इस प्रकार का विचार करना! हम भावनाओं के द्वारा नहीं किन्तु विश्वास के द्वारा परमेश्वर की उपस्थिति को पहचानते हैं, क्योंकि परमेश्वर हमारे संवेगों में नहीं परन्तु हमारे मनों में निवास करता है।

2. स्वतः परमेश्वर को खोजने की अपेक्षा सांवेगिक उत्तेजना को ढूंढ़ने का खतरा। कई मसीहियों का ईश्वर अपूर्व आनन्द को प्राप्त करना बन जाता है।

3. जब संवेगों की अभिव्यक्ति नियंत्रित रूप में न हो तो विपरीत साक्षी की आशंका। अपनी पवित्रता का प्रदर्शन कर हमें दूसरों को मतली नहीं दिलाना चाहिए। परमेश्वर व्यवस्था एवं क्रम का परमेश्वर है और वह नहीं चाहता है कि हम अपनी सभाओं में शिष्टता और व्यवस्था के सिद्धान्तों का परित्याग करें। केवल इसलिए कि दूसरे लोग हमारे सिद्धान्तों को ग्रहण नहीं करते, हमें यह नहीं कहना चाहिए कि वे आत्मिक नहीं हैं। विनय-शीलता कष्ट व यातना को सहन करती है किन्तु दूसरों को पीड़ा कभी नहीं पहुँचाती।

4. अपनी शक्ति व्यर्थ गंवाने का खतरा। विलियम जेम्स ने आदतों पर अपनी अत्युत्तम कृति में कहा है कि जीवन में समुचित रूप से

अभिव्यक्त किए बिना साँवेगिक अनुभवों के आधीन हो जाना हानिकर है। उदाहरणार्थ, यदि आप संगीत कार्यक्रम सुनकर उससे गम्भीर रूप से उत्तेजित होते हैं, तो उस संवेग को किसी न किसी दयालु कार्य द्वारा आपको अभिव्यक्त करना चाहिए, जैसे अगले दिन प्रातःकाल अपनी नानी-दादी से भेंट करने जाना। आत्मिक दृष्टि से भी रोमांचित या पुलकित हो जाना, तदुपरान्त दूसरों की शारीरिक अथवा आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति द्वारा अपने संवेगों को अभिव्यक्ति न करना हानिप्रद है।

5. झूठी पवित्रता का खतरा। भावनाओं को केवल उत्तेजना करके शैतान हमें पथभ्रष्ट कर सकता है। यदि आपने अपनी पत्नी अथवा किसी अन्य व्यक्ति को ठेस पहुँचाई है, तो इससे पूर्व कि आप अपने जीवन में परमेश्वर की संगति को पुनः प्राप्त करें परमेश्वर चाहता है कि आप जाकर उससे क्षमा-याचना करें। अत्याधिक उत्तेजना-दायक सभा में शैतान आपको इस प्रकार कर सकता है कि आपको उल्लास की अनुभूति हो अथवा आप "अन्य भाषा बोल" सकें, ताकि आपको धोखा हो कि आप आत्मा से परिपूर्ण हैं—जबकि स्पष्टतः आप नहीं हैं क्योंकि प्रमुख बात आपने नहीं सुलझाई है।

   आपके लिए भिन्न-भिन्न भाषा में बातें करना उस चोट खाए व्यक्ति के समीप जाकर क्षमा याचना करने से अधिक कौतुक-पूर्ण हो सकता है जिससे आपको नीचा न बनना पड़े। परन्तु परमेश्वर की यह चाह है कि आप सर्वप्रथम क्षमा याचना करें। अन्यथा शैतान ने आपको झूठी पवित्रता के भ्रम में रखकर आपकी आँखों में घुल झोंकी है।

मैं अपने सम्वेगों का अवमूल्यन नहीं कर रहा हूँ। परमेश्वर ने हमें मनोवेग दिए हैं तथा वह नहीं चाहता हम पत्थर सदृश्य हों। किन्तु हम यह न भूलें कि आत्मा से पूर्ण व्यक्ति सदा बाहर निकलकर दूसरों की सेवा करता है, स्वतः को दूसरों का ऋणी समझता है, और संवेगात्मक अनुभवों से स्वयं को ही संतुष्ट नहीं रखता।

हमें दो महत्वपूर्ण तथ्यों को भी स्मरण रखना चाहिए:

1. कोई भी अनुभव जो संवेगों से तने हुए वातावरण की सभा में हुआ हो स्वतः प्रवृत हो सकता है परमेश्वर की ओर से कदापि नहीं।
2. कोई भी अनुभव जिससे व्यक्ति आत्म नियंत्रण खो बैठता है, निश्चय ही परमेश्वर की ओर से नहीं है।

परमेश्वर की यह इच्छा नहीं कि हम अपनी भावनाओं पर आश्रित रहते हुए जीवन व्यतीत करें। वह चाहता है हम विश्वास द्वारा जीवित रहें। इसीलिए वह कभी-कभी हमें आत्मिक रूप से सूखेपन का अनुभव करने देता है। सूखेपन के ऐसे अनुभव सदैव हमारे जीवन में पाप के सूचक नहीं होते। बहुधा उनके द्वारा परमेश्वर का यह प्रयत्न होता है कि हमें स्वतः की भावनाओं पर अवलम्बित रहने से झकझोरे।

इन दिनों हमें अत्यन्त सावधानी-पूर्वक रहने की आवश्यकता है, क्योंकि संवेगों पर आवश्यकता से अधिक बल देकर शैतान अनेक लोगों को बहका रहा है। यदि हम शैतान के चंगुल से छुटकारा पाना चाहते हैं तो स्मरण रखें कि मसीही जीवन का सौन्दर्य आगे बढ़कर दूसरों की सेवा करने में है।

मानवीय असमर्थता:

तीसरा, आत्मा से परिपूर्ण सेवकाई ऐसी सेवा है जिसमें व्यक्ति स्वयं को असमर्थ समझता है। 2 कुरि॰ 10:1 में पौलुस के वचन इस प्रकार हैं, "मैं... तुम्हारे सामने दीन हूँ"-या दूसरे शब्दों में, "मेरा व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं है।" अनुभूति इस प्रकार है कि पौलुस प्रेरित की ऊचाई केवल 4 फुट 10 इंच थी। वह गंजा था और नेत्र-रोग से पीड़ित था। उसका व्यक्तित्व फिल्म-अभिनेताओं जैसे नहीं था। किसी मानवीय कारण पर उसके परिश्रम की सफलता आधारित नहीं थी क्योंकि उसके भाषण व रूप में कुछ भी आकर्षक नहीं था।

अपने प्रचार के सम्बन्ध में, पौलुस ने कुरिन्थियों को लिखा, "मैं निर्बलता और भय के साथ, और बहुत थरथराता हुआ तुम्हारे साथ रहा"

(1 कुरि० 2:3)। प्रचार करते समय स्वतः से परमेश्वर की सामर्थ प्रवाहित होने का आभास करने के बदले उसे अपनी निर्बलता का अनुभव होता था। यही आत्मा से पूर्ण सेवकाई है—क्योंकि स्मरण कीजिए कि पौलुस के प्रचार के कारण उस मूर्तिपूजक शहर कुरिन्थुस में कलीसिया की स्थापना हुई।

जब परमेश्वर का आत्मा किसी व्यक्ति के द्वारा बोलता है तो सामान्यतः उस व्यक्ति को स्वतः यह आभास नहीं रहता कि परमेश्वर उसके मुख से अपने वचन कह रहा है। मैं ऐसे लोगों से सदैव बहुत चौकस रहता हूँ जिन्हें वेदी पर खड़े रहकर इतना निश्चय रहता है कि परमेश्वर उनके द्वारा बोल रहा है (तथा जो यह बताने से भी संकोच नहीं करते)। ऐसे लोगों के साथ मेरा यह अनुभव रहा है कि परमेश्वर ने उनके द्वारा तनिक बातें नहीं की हैं। यह तो उनकी कल्पना मात्र है कि परमेश्वर भविष्यद्वक्ताओं के सदृश्य उनके द्वारा बोल रहा है। जिस व्यक्ति के द्वारा परमेश्वर बातें करता है साधारणतया उसे इस तथ्या का आभास ही नहीं रहता। अपने लेख में पौलुस प्रेरित ने कहा, "मैं समझता हूँ, कि परमेश्वर का आत्मा (यह कहते समय) मुझ में भी है" (1 कुरि० 7:40)। उसे निश्चय ही था कि क्या परमेश्वर उसके द्वारा बोल रहा है या नहीं। तौभी हमें ज्ञात है कि वह परमेश्वर की वाणी थी, क्योंकि पौलुस ने जो कुछ लिखा उसे धर्मशास्त्र में सम्मिलित किया गया है। परन्तु पौलुस स्वतः इससे अनभिज्ञ था।

हाँ, आत्मा से प्रेरित सेवकाई में व्यक्ति स्वतः को असमर्थ अनुभव करता है। जैसा पौलुस ने लिखा है, "जब मैं निर्बल होता हूँ, तभी बलवन्त होता हूँ (2 कुरि० 12:10)। आत्मा से परिपूर्ण परमेश्वर का सेवक बार–बार परमेश्वर के निकट जाकर, दृष्टान्त में वर्णित उस व्यक्ति के समान कहता है, "दूसरों को देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। कृपाकर मुझे जीवन की रोटी दे" (लूका 11:5–8)। परमेश्वर का सेवक अपनी अयोग्यता का सतत आभास करते रहता है।

आत्मा से भरपूर सेवकाई के संबन्ध में हम गलत धाराणाएं न अपनाएं। परमेश्वर की सामर्थ का शत प्रतिशत आभास करने के विपरित

व्यक्ति भय तथा अनिश्चय का अनुभव करता है। कार्य समाप्त हो जाने के बहुत दिनों पश्चात् ही हम पीछे दृष्टिकर निश्चितपूर्वक कह सकते है कि परमेश्वर ने वस्तुतः हमारे द्वारा कार्य किया।

अपनी बुलाहट पूरी करना:

चौथा, आत्मा से भरपूर सेवकाई ऐसी सेवा है जिसमें व्यक्ति परमेश्वर की विशिष्ट बुलाहट को पूर्ण करता है। कुलुस्सियों 1:23, 25 में पौलुस ने कहा, "जिस का मैं पौलुस सेवक बना;" और 1 तीमुथियुस 2:7 में, "मैं...सत्य का उपदेशक ठहराया गया"—स्वयं प्रभु यीशु के द्वारा, किसी सांसारिक संस्कार द्वारा नहीं। परमेश्वर ने पौलुस को प्रेरित होने कि लिए बुलाया। यह बुलाहट उसे सौंपी गई, जैसा उसने कुलुस्सियों 1:25 में स्वतः कहा। यह परमेश्वर का दान था—उसकी उपलब्धि नहीं न ही इसे उसने अपनी विश्वासयोग्यता के द्वारा अर्जित किया था। उसने इसी हवाले में यह भी कहा कि बुलाहट उसे दूसरों के लिए सौंपी गई। कलीसिया को बनाने के लिए वह भंडारीपन उसे परमेश्वर के द्वारा सौंपा गया था।

हममें से प्रत्येक के लिए, परमेश्वर की विशिष्ट बुलाहट है। परमेश्वर ने जिसके लिए हमें नहीं बुलाया है वैसा बनना चाहना तथा परमेश्वर से उसके लिए अनुरोध करना निरर्थक है—क्योंकि पवित्र आत्मा निर्णय करता है कि हममें से प्रत्येक को क्या वरदान दे। पौलुस प्रेरित होने के लिए बुलाया गया। किन्तु प्रत्येक की बुलाहट नहीं है। हम परमेश्वर से बिनती कर ऐसा सामर्थ मांगे कि उसकी बुलाहट के अनुसार कर सकें। पौलुस ने अर्खिप्पुस को सलाह दी, "जो सेवा प्रभु में मुझे सौंपी गई है, उसे सावधानी के साथ पूरी करना" (कुलु॰ 4:17)।

परमेश्वर गोलाकर छिद्रों में वर्गाकर खूँटिया को नहीं भरता। उसे विदित रहता है कि किसी विशिष्ट स्थान में विशेष समय पर उसकी कलीसिया की क्या आवश्यकता है, तथा (उसके आधीन रहने पर) वह हममें से प्रत्येक को विशेष कार्य के लिए तैयार करता है—जो हमारी अपनी कामना से सर्वथा भिन्न हो सकता है। "क्या सब प्रेरित हैं? क्या सब

भविष्यद्वक्ता हैं? क्या सब उपदेशक हैं? क्या सब सामर्थ से काम करने वाले हैं? क्या सब को चंगा करने का वरदान मिला हैं? क्या सब नाना प्रकार कि भाषा बोलते हैं? ...अर्थात् कदापि नहीं (1 कुरि॰ 12:29, 30)। परन्तु परमेश्वर ने मसीह की देह को उक्त समस्त वरदान दिए हैं। हमारे लिए प्रमुख बात यह है कि अपने वरदान तथा अपनी बलाहट को पहचानें तथा अपने वरदानों सदुपयोग करें और अपनी बुलाहट को पूर्ण करें। आत्मा से भरपूर सेवकाई करनेवाला व्यक्ति परमेश्वर की दी हुई अपनी विशिष्ट बुलाहट को पूर्ण करता है।

नये नियम में विशिष्ट रीति से यदि किसी वरदान की खोज करने को हमें प्रोत्साहित किया गया है, तो वह भविष्यद्वाणी का वरदान है (2 कुरि॰ 14:39)। अर्वाचीन युग में सम्भवतः कलीसिया को सर्वाधिक आवश्यकता इसी वरदान की है। क्योंकि भविष्यद्वाणी की सेवकाई करनेवाला व्यक्ति डांटता और सुधारता है, चुनौती देता और शिक्षा देता है, प्रोत्साहित देता और उन्नति करता है (1 कुरि॰ 14:3)। हमें परमेश्वर से प्रार्थना करने की आवश्यकता है कि वह हमारी कलीसियाओं में भविष्यद्वक्ताओं को दे जो निर्भय एवं निष्पक्ष होकर परमेश्वर का वचन सच्चाई से कह सकें– जो ऐसे व्यावसायिक धार्मिक पंडितों से विभिन्न प्रकृति के हों जिनकी रूचि केवल अपने वेतन, पद तथा लोक-प्रियता में रहती है।

परमेश्वर हम सब की सहायता करें कि हम उसकी बुलाहट को जानने के लिए उत्सुकता-पूर्वक उसके मुख की खोज करें।

आत्मा से भरपूर जीवनः

अब हम पुनः पौलुस प्रेरित की जीवनी से आत्मा से भरपूर जीवन की चार विशेषताओं पर दृष्टि करें।

सिद्ध संतोषः

सर्वप्रथम, आत्मा से भरपूर जीवन, पूर्ण संतोष का जीवन है। फिलिप्पियों 4:11 में पौलुस ने कहा, “मैंने यह सीखा है कि जिस दशा में हूँ, उसी में संतोष करूँ।” इस प्रकार के संतोष के साथ-साथ आनन्द

एवं शान्ति की भरपूरी भी रहती है। इसीलिए इसी अध्याय के 4 और 7 पद में पौलुस ने आनन्द एवं शान्ति का उल्लेख किया है।

जब हम अपने प्रति परमेश्वर के सब व्यवहार से पूर्णतः संतुष्ट हैं तभी उसकी प्रशंसा कर सकते हैं। यदि हमारा विश्वास ऐसे परमेश्वर पर है जो सार्वभौम है और इसलिए हम पर बीतने वाली सब बातों के द्वारा हमारी भलाई ही उत्पन्न करता है तो समस्त परिस्थितियों में वस्तुतः संतुष्ट रह सकते हैं। तब हम हबक्कूक के सदृश्य ऐसे समयों में भी परमेश्वर की प्रशंसा कर सकते हैं। जब हमारे बगीचे में कुछ भी फल न लगे हों, जब-जब हमारे पशु मर रहे हों, हमने भारी आर्थिक क्षति उठाई हो-अथवा कोई भी अन्य परिस्थिति क्यों न हम पर आई हो। इफिसियों 5:18-20 द्वारा प्रगट है कि पवित्र आत्मा से परिपूर्ण होने के परिणाम-स्वरूप हमारे मुख से परमेश्वर की स्तुति प्रफुल्लित होती है।

पौलुस प्रेरित ने, कैद में भी जब उसके पाँव काठ में ठोंके गए थे आनन्द प्रगट किया (प्रेरितों 16:25)। वह वहाँ भी संतुष्ट रहा तथा उसने कोई असंतोष प्रगट नहीं किया। आत्मा से भरपूर जीवन के लक्ष्णों में से यह सर्वप्रथम है। जब मसीही बड़बड़ाते हैं, तो उससे सुचित होता है कि इस्राएलियों के समान जो जंगल में परमेश्वर पर कुड़कुड़ाते थे, उन्होंने भी अब तक प्रतिज्ञा के जयवन्त प्रदेश में प्रवेश नहीं किया है।

पवित्रता में वृद्धिः

द्वितीय, आत्मा से भरपूर जीवन पवित्रता में वृद्धि का जीवन है। जैसे-जैसे व्यक्ति पवित्रता में बढ़ते जाता है वैसे-वैसे वह परमेश्वर की असीम पवित्रता का आभास करते जाता है। वस्तुतः परमेश्वर की पवित्रता का आभास ही किसी व्यक्ति की परख है कि वस्तुतः उसने अपने जीवन में पवित्रता में वृद्धि की है अथवा नहीं।

अपने जीवन परिवर्तन के पच्चीस वर्षोंपरान्त पौलुस ने कहा, "मैं प्रेरितों में सबसे छोटा हूँ" (1 कुरि॰ 15:9)। इस पाँच वर्ष के उपरान्त उसने कहा, "मैं पवित्र लोगों में से छोटे से भी छोटा हूँ" (इफि॰ 3:8)।

पुनः एक वर्ष उपरान्त उसने कहा, "पापियों... में सबसे बड़ा मैं हूँ" (1 तीमु॰ 1:15)। ध्यान दीजिए उसने यह नहीं कहा कि "मैं था" परन्तु "मैं हूँ।" इस कथन द्वारा व्यक्त पवित्रता में उसकी वृद्धि पर आपने ध्यान दिया? पौलुस परमेश्वर के जितने निकट सम्पर्क में चला, उतना अधिक उसने अपने हृदयकी दृष्टता एवं भ्रष्टता का आभास किया। उसने जान लिया कि उसमें कोई भी अच्छी बात नहीं पाई जाती (रोमि॰ 7:18)।

चार्ल्स सिमियन ने एक बार कहा कि आत्मा द्वारा नये जन्म प्राप्त करने का प्रधान लक्षण स्वतः से घृणा करना है। धर्मशास्त्र में भी इसकी शिक्षा दी गई है। यहेजकेल 36:26, 27, 31 में परमेश्वर के वचन इस प्रकार हैं, "मैं तुमको नया मन दूँगा, और तुम्हारे भीतर नई आत्मा उत्पन्न करूँगा... मैं अपना आत्मा तुम्हारे भीतर (दूँगा)... तब तुम... अपने अधर्म और घिनौने कामों के कारण अपने आप से घृणा करोगे।" केवल ऐसा ही व्यक्ति स्वयं से दूसरों को बढ़कर समझने की फिलिप्पियों 2:3 में दी गई परमेश्वर की आज्ञा पूर्ण करने में समर्थ होगा। स्वतः अपने घिनौनेपन पर दृष्टि कर वह फिर दूसरों को तुच्छ नहीं समझेगा।

वह तत्काल अपनी असफलता का अंगीकरण करने को भी तत्पर रहेगा तथा पाप को पाप कह सकेगा। आत्मा से भरपूर व्यक्ति केवल दूसरों पर यह प्रभाव डालने का प्रयास ही नहीं करेगा कि वह पवित्रता मैं बढ़ रहा है, परन्तु वस्तुतः बढ़ेगा। वह अपने अनुभवों की साक्षी नहीं देगा, और पवित्रता के अपने सिद्धान्त द्वारा दूसरों पर अपनी धाक जमाने का प्रयत्न नहीं करेगा। उसके जीवन में ही ऐसी पवित्रता रहेगी कि दूसरे स्वेच्छा से उसके पास आएंगे तथा उसके जीवन की सफलता पर उससे प्रश्न करेंगे।

इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि पवित्रता के हमारे सिद्धान्त कैलविन, आरमीनियम या वेसली के हैं। वही व्यक्ति यथार्थतः पवित्रता का अनुभव करता है जो सम्पूर्ण मन से उसका खोजी रहता है, वह नहीं जिसका मन-मस्तिष्क उसके सम्बन्ध में सही शिक्षाओं से भरा होता है। दो धर्मी पुरुषों–डेविड ब्रेनर्ड मौर जॉन फ्लेचर का उदाहरण लीजिए जो 18 वीं

शताब्दि के थे तथा पवित्रता सम्बन्धी जिनके सिद्धान्त सर्वथा भिन्न थे। ब्रेनर्ड निरन्तर अपनी पापमय अवस्था पर तथा परमेश्वर के प्रति अपनी उपासना की कमी पर शोक करते रहता था। दूसरी, ओर फ्लेचर का यह अनुभव था कि वह पूर्णरूपेण शुद्ध किया जा चुका है अतएव स्व-केन्द्रित स्थिति से पूर्णतः शुद्ध है। दोनों में से कौन दूसरे से बढ़कर पवित्र था?

मेरा विश्वास है कि अपने प्रति दोनों के विभिन्न दृष्टिकोण होते भी दोनों बराबरी से सन्त पुरुष थे। विभिन्न प्रकृति के होने के कारण तथा पवित्रता सबन्धी सिद्धान्त पर विभिन्न दृष्टिकोण अपनाने के फलस्वरूप दोनों ने अपनी मनः स्थिति की भिन्न-भिन्न कल्पना की। इसी प्रकार जार्ज वीटफिल्ड और जॉन वेसली तथा जोनाथान एडवर्ड्स और चार्ल्स फिनी भी थे। पवित्रता के संबन्ध में उनके भिन्न सिद्धान्त थे किन्तु वे सब सन्त थे जिनका परमेश्वर ने समान प्रयोग किया। पवित्रता का रहस्य (जैसा कुछ लोग सोचते हैं) नये नियम के यूनानी शब्दों और काल के अध्ययन से नहीं प्राप्त होता किन्तु परमेश्वर को प्रसन्न करने की मनोकामना से। परमेश्वर हमारी बुद्धि पर नहीं अपितु हमारे मनों पर दृष्टि करता है!

पवित्रता में बढ़ोतरी के साथ-साथ सदैव यह आभास भी बढ़ता जाएगा कि परमेश्वर के लेखे हम कितने पापी हैं जैसे पौलुस को भी हुआ।

क्रूस पर चढ़ा जीवनः

तीसरा आत्मा से भरपूर जीवन क्रूस पर चढ़ाया गया जीवन है। पौलुस ने कहा, "मैं मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया हूँ (गल॰ 2:20)। पिछले दो अध्यायों में हमने पहले ही क्रूस के अर्थ पर ध्यान दिया है। हमने देखा कि क्रूस का पथ ऐसा मार्ग है जो आत्मा की परिपूर्णता की ओर अग्रसित करता है। किन्तु हर बार जब क्रूस आत्मा की ओर अग्रसित करता है, आत्मा वापिस क्रूस की ओर लौटा ले-आता है। आत्मा और क्रूस पृथक नहीं किए जा सकते।

क्रूस निर्बलता, लज्जा एवं मृत्यु का प्रतीक है। पौलुस प्रेरित का जीवन भय, आशंकाओं, दुखों तथा आँसुओं से भरा हुआ था (2 कुरि॰ 1:8; 4:8;

6:10; 7:5)। वह मुर्ख और धर्मान्ध समझा जाता था। उससे बहुधा कूड़ा कचरा और सब वस्तुओं के खुरचन के सदृश्य व्यवहार किया जाता था (1 कुरि॰ 4:13)। ये सब बातें आत्मा की भरपूरी के लिए असंगत नहीं हैं। इसके विपरीत आत्मा से भरपूर व्यक्ति को यह ज्ञात होगा कि परमेश्वर उसे ऐसे मार्ग पर अधिकाधिक अग्रसर कर रहा है जहाँ उसे दीन बनना पड़े तथा उसके आत्म-केन्द्रित जीवन की मृत्यु हो।

आत्मा से भरपूर व्यक्ति ऐसा जन है जो लोगों के आदर की तनिक चिन्ता नहीं करता। जब कोई उसे लज्जित करता है अथवा उसकी निन्दा करता है तो वह उसे सहर्ष स्वीकार करता है। वह क्रूस के सिवाय और किसी बात का घमण्ड नहीं करता (गल॰ 6:14)। उसे अपने वरदानो योग्यताओ, यहाँ तक कि अपने आत्मिक जीवन के गहरे अनुभवों तक पर कोई गर्व नहीं होता। वह अनवरत रूप से स्वतः की मृत्यु पर ही अभिमान करता है।

क्रूस ईश्वरीय प्रेम का भी प्रतीक है। मानव के लिए परमेश्वर का प्रेम मनुष्यों के लिए क्रूस पर ईश्वर की मृत्यु के द्वारा प्रगट किया गया। आत्मा से भरपूर व्यक्ति भी ऐसा प्रेम रखता है। उसके तथा हर दूसरे व्यक्ति के मध्य में ऐसा क्रूस होता है जिस पर वह अपने लिए मरता है ताकि दूसरे को प्रेम कर सके। प्रेम का सच्चा अर्थ वही है।

वाचमेन नी, ने अपनी पुस्तिका "टू प्रिंसिपल्स ऑफ कॉनडाक्ट" में चीन के दो मसीही किसानों की कहानी लिखी है कि जिनके खेत पहाड़ की आधी ऊँचाई पर ढाल में थे। वे दोनों सवेरे शीघ्र उठकर दिन में अपने खेतों को सींचते थे। कुछ अन्य किसानों ने जिनके खेत कुछ नीचे स्थान पर थे, एक रात आकर उनके सिंचाई के साधनों में एक बड़ा छेद बनाया और ऊँचे पर से सब पानी नीचे खेतों में बहने दिया। ऐसा ही लगातार सात दिनों तक होता रहा। दोनों मसीही असमंजस में थे कि क्या करें। उन्होंने अन्ततः यह निर्णय किया कि विश्वासी होने के नाते उन्हें इन कृषकों को मसीह का प्रेम दर्शाना चाहिए। अतएव अगले दिन प्रातःकाल शीघ्र उठकर उन्होंने पहले नीचे के खेतों को सींचा तदुपरान्त अपने खेतों को। उन्होंने

अपने तथा दूसरे किसानों के मध्य एक क्रूस रखा और उस पर अपने अधिकारों के लिए मर गए। वे गैर-मसीही कृषक इसी प्रकार लगातार दो तीन दिन तक होते देख पसीज उठे। उन्होंने उन मसीहियों के पास आकर कहा, "यदि मसीहियत यही है, तो हम उसके विषय में और अधिक जानना चाहते हैं।"

यीशु ने कहा कि जब पवित्र आत्मा उसके शिष्यों पर उतरेगा, तब उन्हें उसके गवाह होने की सामर्थ मिलेगी। "गवाह" शब्द मूल यूनानी भाषा में "मारटस" शब्द है जिससे हमें "शहीद" शब्द मिला है (प्रेरित 22:20; 2:13 और 17:6 में इसी शब्द का अनुवाद है)। अतएव प्रेरितों के काम 1:8 का शाब्दिक अर्थ है कि जब पवित्र आत्मा शिष्यों पर आएगा, तो वे शहीद होने की सामर्थ पाएंगे–शहीद इस अर्थ में नहीं जिसको खूँटे से बाँधकर एक ही बार में मौत के घाट उतार दिया गया हो, परन्तु उस अर्थ में जो प्रतिदिन अपने आप के लिए मरता हो। अतः आत्मा से भरपूर गवाह वह है जो क्रूस पर चढ़ाया गया जीवन व्यतीत करता है।

सतत विकासः

चौथा, आत्मा से भरपूर जीवन ऐसा है जो अधिक से अधिक भरपूरी की सतत खोज में रहता है। पौलुस के जीवन परिवर्तन के लगभग तीस वर्ष उपरान्त, जब वह अपने जीवन के अन्त की ओर पहुँच रहा था, उस समय उसने कहा, मैं "निशाने की ओर दौड़ा चला जाता हूँ" फिलि॰ 3:14)। उसने अब तक प्राप्त नहीं किया था। वह अब भी अपने जीवन में परमेश्वर के आत्मा की अधिकाधिक भरपूरी प्राप्त करने के लिए जी तोड़ मेहनत कर रहा था, तथा उस दिशा में अपने प्रत्येक मासंपेशी से यथाशक्ति काम ले रहा था। फिलिप्पियों 3:12 में उसने कहा, "यह मतलब नहीं, कि मैं. ..सिद्ध हो चुका हूँ।" परन्तु पद 15 के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है मानों उसने इसके एकदम विपरीत कहा हो, "सो हममें से जितने सिद्ध हैं, यही विचार रखें।" यही आत्मा से परिपूर्ण जीवन का विरोधाभास है–सिद्ध, और तौभी सिद्ध नहीं, दूसरे शब्दों में, पूर्ण और तौभी अधिकाधिक पूर्ण होने की मनोकामना।

आत्मा से भरपूर स्थिति स्थिरता की अवस्था नहीं है। विश्वासी अधिक से अधिक भरपूर हो सकता है। बाइबल में लिखा है कि पवित्र आत्मा हमें, तेजस्वी रूप में अंश-अंश करके बदल जाता है (2 कुरि० 3:18)-अर्थात् अधिकाधिक तेजस्वी बनाता जाता है। एक प्याला जल से भरा हो सकता है, वैसे ही एक बाल्टी, उसी प्रकार से तालाब या नदी भी। किन्तु प्याले और नदी की भरपूरी के परिमाण में विशाल अन्तर होता है।

नया जन्म पांया हुआ मसीही तत्क्षण आत्मा से भरपूर हो सकता है। पौलुस प्रेरित भी अपने जीवन के अन्त में आत्मा से परिपूर्ण व्यक्ति था। किन्तु नया जन्म पाए हुए विश्वासी और परिपक्त प्रेरित की भरपूरी में विशाल अन्तर है। पहले की भरपूरी एक प्याले के जल की सी है जबकि दूसरे की नदी के जल की सी।

पवित्र आत्मा का यह अनवरत प्रयत्न रहता है कि हमारी क्षमता बढ़ाए ताकि वह हमें अधिक परिमाण में भरपूर कर सके। यहीं क्रूस का प्रवेश होता है। हमार जीवन का विकास अवरूद्ध हो जाएगा यदि हम क्रूस के मार्ग से स्वतः को दूर रखें। इसीलिए कुरिन्थुस के मसीहियों का जीवन इतना उथला था। वे अपने वरदानों के कारण घमण्ड करते थे। और क्रूस की अवहेलना करते थे। अतएव पौलुस ने उनको अपनी दोनों पत्रियों में बारम्बार शिक्षा दी कि वे अपने जीवनों में क्रूस को स्वीकर करें। उसने उन्हें समझाया कि वे इसके लिए अपना हृदय खोल दें (2 कुरि० 6:13)।

यदि हम लगातार अपने जीवनों में क्रूस को स्वीकार करते रहें, तो हमारा प्याला बाल्टी में, बाल्टी तालाब में, तालाब नदी में और नदी अनेक बढ़ती नदियों में बदलती जाएगी। हर स्थिति में, जैसे-जैसे हमारी क्षमता बढ़ती जाएगी, हमें बारम्बार भरपूर होने की आवश्यकता होगी। इस प्रकार हममें प्रभु यीशु की प्रतिमा पूर्ण होगी, "जो मुझ पर विश्वास करेगा...उसके हृदय में से जीवन के जल की नदियां बह निकलेंगी (जो उसने पवित्र आत्मा के सम्बन्ध में कही)" (यूहन्ना 7:38, 39)।

इससे हम समझ सकते हैं कि पौलुस ने इफिसुस के मसीहियों को क्यों यह शिक्षा दी कि "आत्मा से परिपूर्ण होते जाओ" (इफि॰ 5:18)। स्पष्टतः आत्मा से सदा के लिए एक ही बार में भरपूर हो जाने के अनुभव पर पौलुस का विश्वास कभी भी नहीं था। उसने यहाँ जो वर्णन किया है वह अधिक से अधिक मात्रा में भरपूर हो सकने की क्षमता का विस्तार करते रहने के विषय में है।

पौलुस ने स्वतः सदैव क्रूस को ग्रहण किया। उसने 2 कुरिन्थियों 4:10 में कहा है, "हम यीशु की मृत्यु को अपनी देह में हर समय लिए फिरते हैं; कि यीशु का जीवन भी हमारी देह में (निरन्तर बढ़ते हुए रूप में) प्रगट हो।" क्रूस के जिस एक पहलू को उसने स्वीकार किया वह था, शारीरिक लालसाओं को वशीभूत रखना। आत्मा से परिपूर्ण होने का यह अर्थ नहीं कि अनुशासन और परिश्रम को तिलाँजलि दे दी जाए। पौलुस को अब भी अपनी देह पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता थी। उसने कहा, "मैं अपनी देह को मारता, कूटता, और वश में लाता हूँ" (2 कुरि॰ 9:27)। अर्थात् उसने अपनी देह को इस प्रकार प्रशिक्षित किया कि वह जो चाहे नहीं किन्तु पौलुस की इच्छानुसार करें। जो कुछ उसे पढ़ना और देखना था। उसमें उसने अपनी आँखों को, सुनने के विषय में अपने कानों को और बोलने के लिए अपनी जीभ को वश में किया। उसने हर क्षेत्र में अपने जीवन पर अनुशासन रखा। इस प्रकार उसका विकास हुआ।

हमारे जीवन में आने वाले आत्मिक अनुभवों के लिए परमेश्वर का धन्यवाद हो। परन्तु साथ ही हम न भूलें कि प्रत्येक आत्मिक अनुभव हमें कार्य की ओर बढ़ाएं। मसीह न केवल द्वार है। वह मार्ग भी है। यदि हम सकरे द्वार से होकर प्रवेश करें तो हमें संकीर्ण पथ पर चलना ही होगा। हम सिर्फ इन आत्मिक अनुभवों पर ही। विशेष जोर देने के, तथा तदुपरान्त वहीं चिपके रह जाने के दोषी न बनें। नया जन्म जीवन का अनन्य आत्मिक अनुभव है, परन्तु वर्तमान काल में आत्मिक जीवन व्यतीत करना ही प्रधान बात है, अतीत में किसी तिथि को ही स्मरण करना नहीं। कई

तो वह तिथि तक स्मरण रखने में असमर्थ रहते हैं कि उन्हें नये जन्म का आत्मिक अनुभव कब हुआ। किन्तु हम नहीं कहते कि यह व्यक्ति मृतक है सिर्फ इसीलिए कि वह अपनी जन्म-तिथि स्मरण नहीं रखता! तौभी दुख इस बात का है कि कुछ मसीहियों के लिए किसी अनुभव की साक्षी देना ही पर्याप्त होता है। उसी को वे अपने जीवन की परख मानते हैं।

आत्मा की परिपूर्णता के सम्बन्ध में भी, महत्त्व इस बात का है कि वह वर्तमान काल में हमारे जीवन में वास्तविक है या नहीं, उसे हम मसीह सदृश्य जीवन एवं सेवकाई में प्रगट करते हैं अथवा नहीं। अतीत के किसी भी अनुभव का स्मरण, चाहे वह कितना ही विलक्षण क्यों न रहा हो, स्वयं में किसी उपयोग का नहीं है।

परमेश्वर ऐसे स्त्री-पुरुषों की खोज में है जो केवल अनुभवों और "आशीर्वादों" से ही कभी संतुष्ट न रहेंगे। किन्तु प्रतिदिन अपना क्रूस उठाकर मसीह का अनुसरण करेंगे तथा इस प्रकार अपने जीवन एवं सेवकाई में इस वक्तव्य की यर्थाथता को चरितार्थ करेंगे, "अब मैं जीवित न रहा, पर मसीह मुझ में जीवित है।" केवल यही आत्मा से परिपूर्ण जीवन है।